मीरा

: महाकाव्य :



परमेश्वर द्विरेफ



हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

वाराणसी-1

द्वितीय संस्करण
११ ०
अगस्त १९६



मूल्य ३ रु ५० न प

प्रकाशक	मुद्रक
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय	राष्ट्रीय प्रेस
पो बॉक्स नं ७० ज्ञानवापी	बाग बरियार सिंह
वाराणसी-१	वाराणसी-१

सादर समर्पित—

अपनी जननी को

जिसकी गोदी में

मीरां के गीत सुने ।



भूमिका

श्री द्विरेफ शरण प्रणीत 'मीरा' महाकाव्य मैंने पाण्डुलिपि में पढ़ा। प्रसिद्ध ऐतिहासिक रमणी मीरा बाई का आख्यान लेकर यह काव्य रचना की गयी है। कवि ने राजस्थान की तत्कालीन सामाजिक रीतियों, रूढ़ियों और प्रथाओं की पृष्ठ-भूमि पर मीरा का पारिवारिक जीवन चित्रित किया है और उसे उन समस्त अवरोधों के बीच एक मनस्विनी नारी का व्यक्तित्व प्रदान किया है।

कवि ने दिखलाया है कि मीरा के हृदय में भक्ति का बीज बाल्यावस्था में ही बो दिया गया है। पड़ोस की एक लड़की के विवाह के अवसर पर मीरा को बताया गया था कि उसका पति 'गिरधर नागर' है जो यमुना-कूल पर अनेक मनोरम लीलाएँ किया करता था, वही जीवनसाथी होगा। मीरा ने अपनी माँ द्वारा कही गयी इस बात को सहज विश्वास से मान लिया और वह बचपन से ही इन्हीं कल्पनाओं में मगन रहती।

उन दिनों राजस्थानी परिवार में कन्या का जन्म लेना एक [illegible] समझी जाती थी। बहुत-सी तो जीवन भर उपेक्षा और तिरस्कार से पद-पद पर प्राण देती थीं। कन्या का विवाह एक दुष्कर समस्या थी, जो सारे परिवार को जीवन भर चिन्तित रखा करती थी। विवाह में पति देव का मनमाना सम्बन्ध तय करता था। सारी व्यवस्था नारी के लिए त्रासदायिनी थी।

मीरा के बचपन से ही भक्ति के संस्कार दृढ़ हो गए थे। वह बराबर अन्तर्मुख और आत्मनिष्ठ होती जा रही थी। उसे बचपन से गिरिधर गोपाल की चिन्ता थी। उन्हीं के ध्यान में वह सब कुछ, सारी सामाजिक विडम्बनाएँ भूल जाती थी। समाज और उसकी गतानुगतिक भली-बुरी रीतियों से उसे कुछ भी लेना-देना न था। वह समाज की कारा बार बनी हुई विभीषिकाओं से ऊपर उठ चुकी थी। उसने अपने जीवन का एक लक्ष्य बना लिया था—उसी के साथ बँधा चित्त था।

इसी समय मीरा के विवाह की चर्चा होने लगी। पिता अत्यन्त चिन्तित और व्यग्र थे किन्तु वह उत्साह से कर भी क्या सकते थे। मीरा का मन अन्तर्मन में इस असमंजस से दुःखी थी और समाज की उस कुरीति पर गम्भीर विचार कर रही थी जो नर और नारी में इतना विषम विभेद करता है। इसी बीच मीरा की माता का भी शरीरान्त हो गया और सारे उलझन के [illegible] कथा का [illegible] हो गयी।

भाई जयमल और बाबा राव दूदा जी के साहचर्य में बालिका मीरां अब बड़ी होने लगी। मीरां जयमल को अपने प्रभाव में ले आयी थी। उसकी कठोर वृत्तियों का बहुत कुछ शमन कर दिया था। राव दूदाजी अतिशय वृद्ध हो चुके थे। मीरां उनके जीवन-अनुभवों से नई सीख ले रही थी। साथ ही वह अपनी नवीन जिज्ञासाएँ भी उनके समक्ष रखती थी जो अतिशय असाधारण होती थीं और जिनसे दूदाजी चमत्कृत हो उठते थे।

चतुर्थ सर्ग में तरुणी मीरां का सौन्दर्य-वर्णन और उसकी सगाई की चर्चा है। युवावस्था के आरम्भ में वृत्तियाँ और मनोभावनाएँ जिस क्रम से परिवर्तित होती हैं कवि ने उनका चित्रण किया है। सखियों का मीरां के साथ व्यंग्य विनोद करना और वय-सुलभ मनोरंजनों से उसका सत्कार करना दिखाया गया है। यद्यपि मीरां पर नई उम्र का स्वाभाविक प्रभाव पड़ रहा था पर वह अपने बद्धमूल गिरिधर-उपासना के आनन्द को भूल न पायी थी।

पाँचवें सर्ग में मीरां का मंगल विवाह का वर्णन है। यहीं वर्षा ऋतु में राजस्थान की अनोखी और अनुपम शोभा और उल्लास का चित्र भी अंकित किया गया है। इन दोनों प्रसंगों में कवि की भावना खूब रमी है और उसने इन्हें बड़ा रोचक बना दिया है। यहीं फिर मीरां का सौन्दर्य-वर्णन और उसके पति मिलन का दृश्य दिखाया गया है।

शारीरिक आकर्षण और वासना के प्रवाह में जीवन के उदात्त लक्ष्य और सत्संग भूल न जाएं, यह समस्या कवि ने छठे सर्ग में उठायी है। वर्षा के प्रथम स्नान के पश्चात् शरद की सुषमित छटा आनी ही चाहिए किन्तु मीरां के पति इस अवसर पर सत्संग को तजते हैं और बहक जाते हैं। वे बहुत समय तक बहके रहते हैं। अतृप्ति उन्माद विलासमय चेष्टाएं उन पर अधिकार कर लेती हैं। कवि के शब्दों में वे भौतिकता के चक्कर में पड़ जाते हैं।

यहीं से काव्य में नया खिंचाव प्रारम्भ होता है। एक ओर मीरां है दूसरी ओर उसके असंयमी पति हैं। इस विरोध और तनाव में अन्तिम विजय मीरां की होती है परन्तु इसके कुछ ही समय पश्चात् मीरां के पति इस संसार से चल बसते हैं। रुग्ण पति की अविश्रान्त सेवा करते हुए मीरां उनके प्रयाण से अतिशय विचलित हो जाती है। दसवें और ग्यारहवें सर्गों में उसके विलाप-गीत और उसकी वियोग-दशा का मार्मिक चित्रण किया गया है। इन्हीं सर्गों में मीरां की जीवन निष्ठा और उसके आजन्म सेवा-व्रत ग्रहण करने का उल्लेख है। उसका सेवा-दान चराचर तक प्रसार पा गया है। दास-दासियाँ दीन-दुखी किसान मजदूर सभी उसके सेवा-भाव से उपकृत होते हैं।

बारहवें सर्ग में राजस्थान की मरुभूमि में सदाव्रत का सिंचन करती मीरां की जीवन-चर्या दिखायी गयी है। एक मार्मिक घटना का संयोग पाकर यह सर्ग चमक उठा है। उस समय राजपूताने की प्रथा थी कि कुएँ पर जाकर कोई अन्त्यज पानी नहीं खींच सकता था। पानी खींचना तो दूर उसे किसी कुलीन नर-नारी से कुएँ पर पानी मांगना भी निषिद्ध था।

एक अन्त्यज मरुभूमि में चलता-चलता थक गया था। दोपहर हो चुकी थी। उसे प्यास लग रही थी। पानी की खोज में दूर-दूर भटकता हुआ वह एक कुएँ के समीप पहुँचा जहाँ एक पनघटी पानी भर रही थी किन्तु उस [illegible] अन्त्यज को कुएँ पर पहुँच कर भी प्यासा ही रहना पड़ा। युवती ने उसे प्रथानुसार पानी देना स्वीकार न किया। वह पानी के लिए तड़पता-तड़पता मृत्यु के मुख में जाने लगा।

इसी समय भक्ति प्रेरित जन-सेवा के मार्ग पर चलती चलती मीरां भी उसी स्थान पर आ पहुँची और उस तड़पते हुए मानव-शरीर की शुश्रूषा करने लगी। कुछ ही क्षण में वह प्राणी स्वस्थ हुआ। चेतना आते ही वह मीरां के चरणों पर गिर पड़ा।

इस अवसर पर कवि ने मीरां के मुख से समयोचित [illegible] कहलाए हैं।

सर्वान्त सर्ग में मीरां का विषपान करना और उससे निरापद बच रहना दिखाकर काव्य की समाप्ति की गयी है।

काव्य की वस्तु-योजना से यह स्पष्ट भासित होता है कि 'द्विरेफ' जी ने मीरां महाकाव्य में जीवन की विस्तृत भूमिका को स्पर्श करने की चेष्टा की है। राजस्थान की तत्कालीन समाज-व्यवस्था की अच्छी झलक पुस्तक पढ़ कर मिल जाती है। मीरां के प्रणय के संस्कारों का क्रम विकास मनोवैज्ञानिक भूमिका पर प्रदर्शित किया गया है जिससे उसकी चरित्र-सृष्टि में बहुत कुछ मार्मिकता आ गयी है।

शैशवकालीन क्रीड़ा-कौतुक, भाई-बहन का स्नेह, माता-पिता की अभिलाषा और चिन्ता, बड़े बूढ़ों का वात्सल्य, सखियों का मनोविनोद, तारुण्य की मनोदशा, विदाई का अवसाद, मिलन का औत्सुक्य, गणगौर, [illegible] आदि के वर्णनों के साथ उदात्त त्याग और प्रगाढ़ नियमन, समाज की दारुण निर्दयता और व्यक्ति की अगाध क्षमता आदि के दृश्य भी बड़े सुन्दर ढंग से चित्रित हुए हैं।

काव्य में आये हुए मीरां का सौन्दर्य उल्लेखनीय है किन्तु मीरां के सौन्दर्य से भी अधिक कवि का सुन्दरतम प्रकृति-वर्णन है। विशेषकर राजस्थान की वर्षा का वर्णन अत्यधिक आग्रह से किया है। यहाँ इन स्थलों का एक-एक उदाहरण दे रहा हूँ —

[illegible] —

[illegible] में अंकित [illegible]
[illegible]

आज हृदय से दूर निराशा
जीवन की यह स्वर्णिम जय है।
आज विटप में शिव किसलय है।

एक प्राकृतिक चित्र —

हँस रहा था लास्य अंतर में नित्य अनुराग
उषा का सुकुमार यौवन खेलता था फाग
मुक्त पर्णों पर तुहिन के कण रहे थे खेल
बाल रवि की अरुणिमा का था अलौकिक मेल।

०

पक्षियों के रव अमरपुर की मुरज झंकार
क्षुब्ध पावस सरित का-सी कलित गर्जित धार
गूँजता था किसी विरही के हृदय का प्रान्त
शान्त जिसकी रागिनी पर झूम जाता स्वान्त।

प्रकृति-वर्णन के स्थल भी अच्छे हैं यद्यपि वे आवश्यकता से अधिक विस्तृत हो गये हैं। उनसे अधिक प्रभावशाली वे चित्र हैं जिनमें दुःख-काल की स्थिति का यथार्थवादी उल्लेख है किन्तु उनसे भी अधिक मार्मिक वे उत्साह-पूर्ण वाक्य हैं जो किसी की ओर से या मीरों के मुख से कहे जाकर काव्यगत जीवन-दर्शन का निर्देश करते हैं —

उड़ उड़ कर नभ का छोर चाह रहा नर
एक पग सन्तुलन-हीन गिरता जाता पर।
फिर भी नर की भग्न भावना नहीं हारती
कातर मैं निरुपाय बद्ध नारी पुकारती।
मुग्ध भरी रह गया आज नारी के स्वर का
मान छिन्न हो गया उस निज शक्ति प्रखर का!
भग्न हुई उर-वीणा के तारों में कम्पन
विप्लव था दुखिया के प्राणों में क्रन्दन।

ऐसी ही भावोत्तेजक पंक्तियों में 'मीरा महाकाव्य' की आत्मा बोल उठी है। मुझे इस काव्य में नई सूझ और प्रतिभा के दर्शन हुए। रचना निश्चय ही प्रथम श्रेणी की है।

अध्यक्ष हिन्दी विभाग
सागर विश्वविद्यालय

नन्ददुलारे वाजपेयी

●

प्रणेता का पृष्ठ

मीरां महाकाव्य में मैंने मीरां के जीवन का ही निरूपण किया है। यह सत्य है कि मीरां के गायन मार्ग का अभिन्न-स्वरूप ही है पर कवि के मन में मीरां बालिका किशोरी और तपस्वी भी है। प्रथम सर्ग में साधारण बालिका मीरां को उसकी माँ ने जिस गिरिधर नागर का आराधन किया उसी को अन्य सर्गों में उसने स्वप्न में माँ के मरण पर बन्धन के रूप में दासजी के साथ जिज्ञासा के रूप में प्रणय पर पति के रूप में और वधस्य पर आश्रय के रूप में तथा जन-साधारण की भाषा के स्वरूप में ग्रहण किया है—यही इस विकास प्रस्तुत काव्य का प्रयास रहा है। जीवन की स्वाभाविक प्रवृत्ति द्वारा उत्पन्न अन्तर्द्वन्द्व को भी विस्मृत नहीं किया गया है। गायन वादन नर्तन और काव्य प्रणयन आदि में प्रवीण होने के कारण मीरां मेरी भावना में चिरस्पर्शी भी है। वह भाव-मग्न कल्पनातीत रससिद्ध कोमल कला-निमग्ना ही नहीं अपितु उस मन जीवन दायी अनुभूति प्रवणा मानवी भी है। वह काव्य और कला के कानन को रस सिञ्चित करने वाली पुण्यतोया मन-मन्दाकिनी तो है ही साथ ही अपने उत्ताप से तपाकर हिम-शीतल और पाषाण को अपने जीवन रस में मान कर बहा ले जाने वाली गुरु-गम्भीर भी है। काव्यमय स्वरूप में भी अधिक भाव की सर्वांगीण अनाविलता विषयों का जीवन आलम्बन पर बना हुआ है। ऐतिहासिक तिथि संवत् आदि के चक्र में न पड़कर मीरां के जीवन का ही निरूपण का प्रयत्न किया है। इस महाकाव्य में उसका अन्तर्नाद साथ त्याग भाव में कहीं सुलभ नहीं। जनश्रुति में रविदास को मीरां का गुरु प्रसिद्ध है इसलिए काव्य में मीरां के द्वारा पूजित अंकुर का गया स्वामी निर्दिष्ट है। मीरां साधारण नारी भी है स्वाभाविक स्वाभाविक अन्तःकरण उपकार के चिन्तन में भी उसकी अनुभूति है। कवि और मीरां में समता है न केवल उन्माद कवि के मन में भी वह जा सकता। यह ज्ञान मेरा आदर्श है। इन गुण उदाहरणों में मैंने मीरां का एक गुणाकार दर्शाया है हृदय का काम किया है। काव्य में अपनी ही निश्चित निर्दिष्ट मीरां के प्रति मेरी मनोभावना की अभिव्यक्ति कर सका। मेरा यही निवेदन है—

आज हृदय से दूर निराशा
जीवन की यह स्वर्णिम जय है।
आज विटप में शिव विस्मय है।

एक प्राकृतिक चित्र —

हेम रंग था शस्य अञ्चल में लिए अनुराग
अन्न का सुकुमार यौवन मचलता था फाग
मुक्त पर्णों पर तुहिन के कण रहे थे रात
श्रान्त रवि की अनुज्ञा का था अलौकिक मेल।

• •

पक्षियों के रव अमरपुर का सुखद मल्हार
क्षण पावस मदिर का-सा कलित गर्जित धार
गूँजता था किसी विरही के हृदय का प्रान्त
शान्ति जिसकी रागिनी पर भ्रम जाता स्वान्त।

रूप-वर्णन के स्थल भी अच्छे हैं यद्यपि वे आवश्यकता से अधिक उत्तेजक हो गए हैं। उनसे अधिक प्रभावशाली वे चित्र हैं जिनमें देश-काल की स्थिति का यथार्थवादी उल्लेख है किन्तु उनसे भी अधिक मार्मिक व उत्साह-पूर्ण वाक्य हैं जो किसी भी ओर से या मीरा के मन से कह आकर काव्यगत जीवन-दर्शन का निर्देश करते हैं —

उड़ उड़ कर नभ को छू डालें चाह रहा मन
एक पग सन्तुलन-हीन गिरता आता पर।
फिर भी नर की भव्य भावना नहीं हारती
कोटर में निरुपाय बद्ध नारी पुकारती।
मुख्य नहीं रह गया आज नारी के स्वर का
मान छिन्न हो गया उस निज शक्ति प्रखर का!
मग्न हुई उर-वीणा के तारों में क्रन्दन
विषधर भी फुनगियों के पातों में चन्दन।

ऐसी ही भावोत्तेजक पंक्तियों में 'मीरा' महाकाव्य की आत्मा बोल उठी है। मुझे इस काव्य में नई सूझ और प्रतिभा के दर्शन हुए। रचना निश्चय ही प्रथम श्रेणी की है।

अध्यक्ष हिन्दी विभाग }
सागर विश्वविद्यालय }

नन्ददुलारे वाजपेयी

•

प्रणेता का पृष्ठ

मीरां महाकाव्य में मैंने मीरां के जीवन को ही निकट से देखा है। यह सच है कि लोगों के सामने मीरां का भक्ति-स्वरूप ही है पर कवि के समक्ष मीरां नारिका विचारिका और त्यागी भी है। प्रथम सर्ग में साधारण बालिका मीरां का उसकी माँ ने जिस गिरिधर नागर की ओर इंगित किया उसी को अन्य सर्गों में उसने स्वप्न में, माँ के मरण पर सम्बल के रूप में, भोजराज के साथ जिज्ञासा के रूप में, प्रणय पर पति के रूप में और वैधव्य पर आश्रय के रूप में तथा जन-साधारण की आत्मा के स्वरूप में ग्रहण किया है—यही मर्म-विकास प्रस्तुत काव्य का प्रयास रहा है। जीवन की स्वाभाविक प्रवृत्ति द्वारा उत्पन्न अन्तर्द्वन्द्व को भी विस्मृत नहीं किया गया है। गायन वादन नर्तन और काव्य प्रणयन आदि में प्रवीण होने के कारण मीरां मेरी मान्यता में विदुषी भी है। वे भाव मग्न कल्पनातीत रस सिद्ध कोमल कलात्मिका ही नहीं अपितु जन जन जीवन व्यापी अनुभूति प्रवणा मानवी भी है। वह काव्य और कला के कानन को रस सिञ्चित करने वाली पुण्यतोया मन्दाकिनी तो है ही साथ ही अपने उत्तम वेग से कठोर हृदय-शिला और पाषाण को अपने जीवन रस में सान कर बहा ले जाने वाली गुरु-गम्भीरा भी है। कल्पनामय स्वप्न से भी अधिक आज वह मान्यता अगणित अबलाविनिता विधवाओं का जीवन अवलम्बन बनी हुई है। इसीलिए मैंने निधि गणना आदि के बन्ध में न पड़कर मीरां के जीवन को ही निकट से देखने का प्रयत्न किया है। उस महाकवि-आत्मा से उसकी अन्तर्नाद गाथा व्याप्त सार में कहीं सुलभ नहीं। जनश्रुति में इतिहास की मीरां का [illegible] होना प्रसिद्ध है इसीलिए काव्य में मीरां के [illegible] अवश्य हो गया स्वाभाविक है। मीरां सर्वसाधारण की भी है इसीलिए युग-युग अन्तःकरण उद्गार के रूप में भी उसकी आकृति रही है। कवि और मीरां में एकात्मता होने के कारण अतः उद्गार कवि के मन में भी रह आ गये [illegible] यह बात सदा आदरणीय है। [illegible] मीरां का एक सुन्दरतर झाँकी में दर्शन करा [illegible] है। काव्य में [illegible] मीरां के [illegible] भावनाओं का अभिव्यक्त कर सके। इसी प्रकार विश्वास है—

मीरॉ · महाकाव्य :

•

प्रथम सर्ग



आँगन में रज-मधुमय भू पर
बालिका एक लघु-लघु सुन्दर
चुपचाप मौन निस्पन्दित स्थिर
ज्यों दीपा

साधक का ज्यों आराधित मन
ज्यों कवि का साकार चिन्तन
ज्यों दीप-शिखा सी मन मोहन
तल्लीना

[illegible] का अम्बा गुणसम्पन्न
मधु चरणों में नूपुर खनखन
इकहर स्निग्ध तन पर यौवन
था छाया

[illegible] अंगिनत [illegible]
[illegible] यह बना मिट्टी का घर
[illegible] [illegible] [illegible] बिखरी [illegible]
ज्यों होता

मीराँ

साकार हुआ सुन्दर चिन्तन
वर्तुलाकार बन गया सदन
जिसमें केन्द्रित था उसका मन
आच्छादित

कितना सुन्दर था यह लघु घर
यह नहीं कहा जा सकता पर
सब कुछ भूली उसको पाकर
वह बाला

वह भाव भरा ले अंतस्तल
करती थी प्रतिपल हस्त माल
ऊपर रवि भीतर तिमिर जाल
सगुफित

जाने क्यों फिर उसने पग धर
कर दिया स्वच्छ अपना घर ?
सोगई नींद में फिर पीकर
ज्यों हाला

लेटी थी भू के अंचल में
ज्यों मीन शान्त नीरव जल में
कुछ भाव न थे अंतस्तल में
निर्लिप्ता

मीराँ ! मीराँ ! के मृदु मृदु स्वर
से सहसा गूँज पड़ा यह घर
पर मिला नहीं कोई उत्तर
चिर परिचित

स्वर से होता था यही भान
है मातृ-हृदय का सजल गान
जिसमें मनमाना सुता-ध्यान
प्रतिबिम्बित

प्रथम सर्ग

कर इलाहल* मा अन्यतम
आई आँगन में ज्यों शलभ
देखा तो था तन पर हस्त-कमल
का ताना

बाजे की गूँजी प्यार-लहरी
हृदय में निकट निकट गहरा
पर यह माह थी ज्यों बहरा
मद घूर्णित

दमके सर्गों मा जी भर भर
ज्यों ही कलिका सी यह सुन्दर
लघु लघु भौंहों का लघु लघु स्वर
मन मकृत

कटकन्या ज्यों ही हुआ शयन
संस्मृति का करन हुए मयन
मधुमास निःस्वन रह नयन
अनन्यानन्द

कर हिलाये आतुर मा ने
लने गोदी में अनजाने
समभाव मातृ-पद पाने
नैसर्गिक

धरती मा उमड़ा कर चुम्बन
हृदय बना वर्षा का अम्बर !
भर लिया गर्भी छिट्टी से तन
कर्ण कण !

शिशु का जब [illegible] पान देख
ला मृण्मय [illegible] य [illegible]
धरणी पर बना कथा उर्मिल
आ गयी !

अविरल बाजा बज रहा निकट
आई बरात तुम चलो झपट
बालों की बिखर रही ये लट
परिवर्तित

सब पहुँच गये मंडप नीचे
तू सोती रही नयन मींचे
भर लिए अलक सौरभ मीचे
श्री-भासित

क्रीड़ा-कदुक कन-पुतलियाँ
दासी, धायें हँसमुख अलियाँ
पर तुमको प्रिय रज की गलियाँ
मल-पंकिल

अभिनव सुन्दर मंडप दीपित
बक के नव पक्षों सा विस्तृत
था घर अभिनय-गृह सा सज्जित
प्रिय सुखकर

था जन-संकुल बाहर—भीतर
निज कर्मों में रत नारी नर
थे लगे हुए प्रतिपल पथ पर
दृग नीरव

बाजे का गूँज रहा था स्वर
बजते आते थे चरण चरण कर
घर के ही निकट बराती वर
स्मित-आनन

गाती थी गायन किन्नरियाँ
सुन्दर सुरेन्द्र की सी परियाँ
गुंजित गहरी बत-पुरियाँ
दीपोज्ज्वल

स्वागत-गायन गाती सखियाँ
पथ पर यों बिछा रहीं कलियाँ
रस में डूबी मन की गलियाँ
मधु-सिंचित

थे भूल रहे चिन्तक चिन्तन
गायन-स्वर में डूबे घर जन
कामिनियों का तरल यौवन
लावण्यतर

मीरों के घर के बहुत पास
ही यह विवाह उल्लास हास
था कलिका का मधुमय विकास
मनुरंजन

उसकी मादक की दिव्य लहर
से गिरधर आगया था यह घर
बन्धन में बँधकर भी मधुकर
आनन्दित

मीरां का जब यह जिस पथ
पहुँची घर में अविलम्ब पथ
घर पूरा रहा मा परमाराध्य
यथावित

यह दर हुई क्यों कहा कन्त!
तुम तो उसका दू यहीं मात्र
हम दास दास तुम प्राण प्राण
मायापति!

यों बारम्बार हुआ उधर भर
मीरा की मा ने सब सह कर
अन्तस स्वर गुंजित किया प्रखर
निज पावन

अवलोकन में भूली बाला
घर भरा हुआ मंडपवाला
आर्ती की भवती थी माला
करुणामय

सूना घर आज हुआ अपना
मस्तक पीड़ित उर भी भारी
वह पुत्री प्राणों से प्यारी
तिल तिल क्षण क्षण कर बड़ी हुई
जब बड़ी हुई तो बेचारी
अनजाने गाँव चली जिसका
कोई न वहाँ परिचित अपना
सूना घर आज हुआ अपना

वह दृश्य देखती थी अपलक
मीराँ सुधबुध विस्मृता अथक
नव वधू मौन था नतमस्तक
लज्जित वर

सहसा फिर बाल-सुलभ-स्वभाव
से विस्मित उर में लिये घाव
बोली मा से ये भरे भाव
आनन्दित

ह कौन, कहाँ मा ! मेरा वर ?
मैं किसकी दुलहिन बनी अमर ?
यों सुन आया मा का जी भर
रोमांचित

जिस गायन को गाते-गाते
मीराँ पुत्री भी हस जाते
सोची यों जाने को बातें
उर-द्रावक

प्रथम सर्ग

प्रतिध्वनित हुआ यह ही चिंतन
जननी का मन बन कर उन्मन
विस्फारित करने लगा नयन
सूनापन

महिलाओं ने उपहास हास
कर लिया, किन्तु मां छोड़ ग्रास
गंभीर हुई था पर उदास
अनिरंजित

जिस नारी के हो अंग सुना
बन्धन यह क्या रे! मन्द घना
पर कहाँ चिरंतन कौन पता?
आकुलता

फिर सहसा हँसते हुए मधुर
दे दिया स्वरों में यह उत्तर
छटा पति का नश्वर भास्वर
गो-पालक

माँ के माथा था पद्म अनिश्चय
हट न कहा दुहिता का मन
इसलिए बनाया पर साधन
सर्वेश्वर

पर यह आशा मर्महीन हुई
मिल गई जब अनुभूति नई
यह मरनागर गोपाल-मयी
चिर चिन्तन

दिन गया निशा भी गई बीत
स्वप्न सम में भी प्रत्यवगीत
पर अगत: निरपुर प्रहरदीप
परिवर्द्धन

प्रथम सर्ग

ये सुनते रास-विलास-गान
आई मीरा अब यश-हीन
[illegible] पुकारती उन्हें दीन
दयनीया

जो दुख उसका बड़ा धीर
दुर्योधन की तज मधुर खीर
कर लिया विदुर का पान नीर
प्रेमाश्रित

रहते नागर बैकुण्ठ धाम
राधा के साथ सदा ललाम
साधन भव के सभी काम
पल प्रतिपल

कह कर यों ले श्रद्धा अपार
मन ही मन में यह बार-बार
मानसिक निमग्न [illegible]
थी करती

नीलम मोतों के सदृश माथ!
पृथ्वी पर रखना अभय हाथ
यह कामना करती नत-नयन माथ
कर-बद्ध

करती आशा थी [illegible]
मीरा चिन्तित वह व्यथा-व्यग्र
[illegible] दुःख आता था मन
चिन्तनमय

[illegible] महान् किन्तु सुन्दर
सर्वेश्वर [illegible] का आगार!
उनकी दुर्लभ व [illegible] बार
[illegible]स्पर्शी

मीरां

सोते चिन्तन जगते चिन्तन
नटनागर में उलझा था मन
जग से उदास, घर से उन्मन
अन्तर्तम

अस्पष्ट रूप-रेखा सुन्दर
नयनों के आगे रह रह कर
देता थी भावों से भर भर
अन्तस्तल

यह एक दिवस की रही बात
लेटी थी मा के साथ साथ
चन्द्रिकामयी थी शरद् रात
सुन्दरतम

मा गोपालक नटवर नागर
ये कौन कहाँ है इनका घर ?
तू कहती रही न मेरे घर
शिव शाश्वत !

मा के विस्मय का था न पार
अन्तर्मन में गहरा दुलार
उसके भावुक मन का विचार
वात्याचित

वह काली यह जो शुभ्र रात
है दीख रही ज्यों नव प्रभात
जब बहता रहती मलय-वात
सुगन्धयुक्त

कालिन्दी के अभिराम कूल
सुध-बुध जाती गोपियाँ भूल
सब शनै शनै छिप कर दुकूल
एकत्रित

प्रथम सर्ग

ये पुनीत रास-विलास-स्थान
बाढ़ मारी अब पथ-हीन
प्रक्षिप्त पुष्करणी उन्हें दान
दयनीया

वो दैन्य उमड़ा घन घोर
वृन्दावन का वह मधुर स्वार
कर लिया विदुर का पान नार
प्रमाहित

रहता नागर पंकज धाम
राधा के साथ सदा ललाम
मोहन मन के सभी काम
पल प्रतिपल

यह घर था म सदा अपार
मन हो मन में यह धार-धार
मानसिक विमल पदारथ्यार
थी करती

मीरा भावों के सदृश नाथ !
पृथ्वी पर रखना अभय हाथ
यह शासन बलि जन-जन साथ
जन-वहा

कहता आता थी अमनाचन
मीरा विमल वह कथा-प्रसंग
नटनागर कृष्ण आता घर मन
चिन्तनमय

गिरधर महान चितन सुन्दर
सौंदर्य स्पंदन का पगार !
उमड़ा दुर्लभ वे घर घर
स्पन्दन

यों सोच रही थी वह बाला
जिसका न जगत् देखा भाला
भावों का विस्तृत था जाला
सतरंगा

सो गई यही करते चिन्तन
सच्ची थी या ऐसा ही मन
सपनों की क्रीड़ा का बचपन
उच्छृंखल

उसकी निःसृत-आयात साँस
में था गहरा विश्वास ह्रास
पर जाने क्यों मा थी उदास
सम्मुखा

उसके श्रवणों में एक बात
मा ! तुम क्या गाती हो प्रभात ?
किसका करते संधान तात
मुद्रित दृग

मैं उनको कैसे करूँ प्राप्त ?
तुम कहती थे सर्वत्र व्याप्त
धरती का छोर कहाँ समाप्त ?
उद्गमस्थल ?

क्षण क्षण कर पूरी हुई निशा
हँस पड़ा पर्व में अरुण उषा
तम हुआ लीन था स्वच्छ दिशा
ज्योतिर्मय

थी जाग पड़ी मीराँ चंचल
अत्यन्त निकट उसके जयमल
दोनों क्रीड़ा-तन्मय निश्छल
निज दैनिक

बोली सोरों भैया अथमल
मेरी गुड़ियों का विवाह कल
देखो, यह पहनेगी मखमल
रत्नांकित

आओ, हम तुम चुन-चुन लायें
पीपल के पत्ते जो पायें
सब घलो न कोई रह जाये
संचय कर

ये पर्ण-चयन का चल युगल
मानो गतिमय निस्चाम्य सरल
कूप के निकट रहा चलदल
अति विस्तृत

उसकी शीतल गहरी छाया
से गुम्फमय कूप की काया
शाखा पर पत्तों की माया
मनमोहक

पीपल की छाया में जो भाग
कूप के बहुत निकट लगभग
सहते थे हलचल भग-भग
पद कर-पद

देखन लगे वे गये भूल
आये थे क्या उद्देश्य मूल !
सब बढ़ गये फिर आई धूम
पनघट पर

पनघट का था अमपूर्ण गर्व
कइ ईंट का टूट गर्व
आराम में दोनों छिप सर्व
रामर्पित

मीरां

छोड़ने लगे नावें जल में
घूमने लगीं तिर तिर पल में
स्फाटिरेक अतस्तल में
संप्लावित

कागज की दोनों स्वच्छ नाव
प्रिय थे उनको वे हाव भाव
दोनों को ही अत्यन्त चाव
जिज्ञासा

क्षण क्षण प्रतिक्षण पल प्रतिपल कर
जब एक नाव डूबा गल कर
मीरां पछताई कर मल कर
व्यामूढ़ा

कागज का ही यह रहा खेल
पर वह न व्यथा कुछ सकी झेल
सच लिया मान थी शुष्क बेल
संचिन्तन

स्मृतियों की दीप्त हुई सरणी
वह कितनी सुन्दर थी तरणी !
मानस की काँप गई धरणी
आलोड़न

पर भूली क्योंकि अभी बाला
सुख–दुख से पड़ा न था पाला
दुखता न अभी तक था काला
तम भीषण

फिर बाला यों प्रसन्न अयमल
वह कहती रही न मुझसे कल
"चन्दा मामा मेरे अविरल
अनुगामी

मा करता थी यों नहा बात
य बलन मर माय-माय
करन य यह हीं बन गान
मर्ग्गीकिम

फिर योस पता वह नहो नहीं
य माय तुम्हारे वच कहा ?
मरे अनुगामी महा यहीं
शिशु माला

माँ न यह क्या बनाइ है
काला, वह बुढ़िया आइ है
करनी निन यहाँ बनाइ है
धाया में

यह मा माँ ने कस दिया मान
नीचे धरता के वन-बान
है एक मोग वाला महान
धरती-धर

जब-जब भी होगा पान हरा
भला है वह कमकला जरा
फड़ कर नव आती धँस धरा
दिग्विदम

फूलों का जा गुच्छा प्यारा
था मम की गैंस का धना
रस पर गुर-गुर पथ प्यारा
गुरुन्निक

रानी फिर धुप में मुक कर
बमन बत धुप मन-मन कर
मन प्यार त्या फिर कटुक पर
दमयन्ती

मीराँ

डोलने लगीं नावें जल में
घूमने लगीं तिर तिर पल में
कृपातिरेक अतलतल में
संप्लावित

कागज की दोनों स्वच्छ नाव
प्रिय थे उनको वे हाव भाव
दोनों को ही अत्यन्त चाव
जिज्ञासा

क्षण-क्षण प्रतिक्षण पल प्रतिपल कर
जब एक नाव डूबी गल कर
मीराँ पछताई का मन कर
व्याकुला

कागज का ही वह रहा खेल
पर वह न व्यथा कुछ सका झेल
सच लिया मान था शुष्क खेल
सचिन्तन

स्मृतियों की दीप्त हुई सरणी
वह कितना सुन्दर थी तरणी!
मानस की काँप गई धरणी
आलोड़न

पर भूली क्योंकि अभी बाला
सुख-दुख से पड़ा न था पाला
दशा [illegible] अभी तक था काला
तम भीषण

फिर आशा यों अमल जयमल
सू कहती रही न सुमुख कल
"चन्दा मामा मेरे अविरल
अनुगामी

[illegible]

ना [illegible] थी थी [illegible] [illegible]
थे [illegible] ने [illegible]
[illegible] य [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

फिर देख रहा यह नहीं नहीं
थे रूप तुम्हारे [illegible] कहाँ ?
मेरे [illegible] ना [illegible] [illegible]

[illegible]

माँ ने यह [illegible] [illegible] है
[illegible] यह दुनिया [illegible] है
[illegible] फिर यहाँ [illegible] है

[illegible]

यह माँ माँ ने [illegible] लिया [illegible]
पीछे [illegible] के [illegible]
है यह [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible] ना [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] है [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
यह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible] फिर [illegible] में [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] फिर [illegible] [illegible]

[illegible]

दोनों करते करते क्रीड़
लड़ने लग गये, हुई अनबन
थे भूल गये सब अपनापन
थे क्रोधित

मीराँ का भर मिट्टी से तन
जयमल करने लग गया रुदन
उसने भी उसका किया वदन
रुदनोत्सुक

फिर रोते-रोते चले गेह
थे धूलिकणों से भरे देह
अंचल में मा ने किया स्नेह
मधुभाषण

कितने ही यों निशिदिन बीते
यों ही रहते हारे जीते
थे साथ-साथ खाते-पीते
थे निश्छल

सोते जगते मा के चिन्तन
से वह भी विभु में मन ही मन
तल्लीन हुआ करती प्रतिदिन
अज्ञाता

मा स्वयं शील विश्वास-युता
तो क्यों न विमल निष्काम सुता ?
फूली कलिका की हरी लता
रस-प्लावित

कोई दिन इनके एक बार
घूमता साधु घर द्वार-द्वार
आया पाकर सत्कार प्यार
श्रद्धामय

था वंशीधर की मूर्ति पास
उसके, अभिनव सुन्दर सुहास
पाने उसको मीराँ उदास
थी व्याकुल

छोड़ा उसने सब खान पान
प्रतिमा में ही बस गये प्राण
दो दिन बीते पर वही ध्यान
वह ही धुन

मा ने समझाया बार-बार
ऐसी चीजों का क्या विचार ?
मैं और मँगा दूँगी अपार
मनवांछित

पर उसके अन्तर की पुकार
गहरी थी था गहरा विचार
तन हुआ म्लान पर कहाँ हार ?
ध्रुव चिन्तन

बालिका जान उसने अजान
थे किये मूर्ति के गुण-बखान
शिशुओं में जिज्ञासा प्रधान
अपना हठ

था उसे सर्वथा नहीं ज्ञात
इतना फैलेगा यहाँ बात
उसके मन में आघात-घात
पछताया

उसको प्रिय था वह मूर्ति महा
पर भावुकता का स्रोत बहा
तो सहसा निकला धन्य अहा !
यह बाला

अन्धकार के महा विवर से
सौम-साय का ध्वनि आती थी
मानो जग का गहन कालिमा
फिर घुन घुन कर पछताती थी

थकी हुई थी कान्त पार्श्व में
मृदु शय्या पर पग पसार कर
लग गई उर्मिलाल कुञ्ज में
ज्यों इन्दिरा सुध बुध बिसार कर

सन्न मार निर्जन हुलन से
निद्रा टूट गई प्रियतम की
मुख नयन जमाई आई
झाँकि हाय परों में चमकी

स्वप्न लघु विस्मृत वाणी में
प्यार अनुराग भरे ये बोल
पड़ न पाया स्वन् श्रवणों में
कह उठे तुम हौले हौले !

मन्द व्यथा में यों वह बोली
क्षण लगा मन मान का !
पता नहीं अब रहा आज कुछ
नयन मिलन में खो पाने का !

कल आज की होंगी बातें
विस्मृति एकाकी कोने में
उग रहे ये रात-रात भर
चन्दन के मधुमय गौने में

उर प्रभात के ये पल हो
ठहरी बन गये ये बन्धन के
भर न सकेंगे नाद, सुनहले
स्वप्न सा विस्मृत ये मन के

किन्तु प्रतीक्षा नहीं रही वह
आज आप के दिन हैं प्रियतम !
नयन नींद में सो जाते थों
क्योंकि आज मैं रही न उत्तम

दिन मेरे हैं आज प्रियतमे !
तो क्या नही तुम्हारी रातें ?
सभी व्यथ के झगड़े छोड़ो
करो काम की सुन्दर बातें

भुज-पाश में बंद कर लिया
कह कर यों प्रियतमा वक्ष को
लाली मीरा जग जावेगा
करो न गुंजित शयन कक्ष को

पहले ही सो गई आज यह
बिना दूध के ही बेचारी
और चढ़ रहा था परसों ज्वर
पीड़ित थी जिससे सुकुमारी

इन दिवसों म इसके सिटपिट
रही हो गई कितनी दुबली ?
खाने-पीने की चिन्ता को
छोड़ खेल में रहती पगली

मंदिर के बूढ़े बाबा से
कहा आपको, लाला अवर
बिटिया के हो गइ नजर है
पंडित से पढ़वाओ मंतर

किन्तु आपने किया न कुछ भी
जाने क्या करते हो दिन भर ?
चौपड़-पासे में रहते हो
मिलता क्या अवकाश न क्षणभर ?

केवल एक घर में कन्या
ध्यान नहीं देता उस पर भी
बाहर ही बाहर की चिन्ता
आखिर है तो अपना घर भी ?
नहीं करे भगवान किन्तु फिर
भी यदि कुछ भी ह्रास हो गया
जीवन का आधार हमारा
चिर निद्रा में कहीं सो गया

तो मैं कहाँ छिपाऊँगी मुख
किसको देख-देख जीऊँगी ?
किसके साथ साथ हँस मिलकर
क्या कहूँ, खाऊँ-पीऊँगी ?
कह कर यों गंभीर हो गई
घूम रही थीं स्मृतियाँ सारी
वे दिन, जिनमें सन्तति-कारण
फिरती रहती मारी मारी

जरा जरा से भी जन जन की
करनी पड़ती थी उपासना
रखना पड़ता था सब का मन
रही अमिट मातृत्व-वासना
स्नान ध्यान, तरु सिंचन पूजा
निराहार निर्जल व्रत चिन्तन
में झंकार गूँजती आयें
पुष्पवती होने के मधु क्षण

मूर्तिमान प्रत्यक्ष हो गये
कठिन साधना जप-तप अविरल
सोच-सोच यों थी वह चिंतित
कहीं टूट जाये यह संबल !

बार-बार यह सोच-सोच कर
भी न जरा कुछ आन सकी थी
घूम रही थी इधर उधर हो
निश्चित पथ कुछ पा न सकी थी

राजपुत्र कुल की बालाओं
को भी पुत्री क्यों न सुहाती ?
पान्ल—रसिका—बालाओं से
क्यों असहाय उदासी छाती ?

किया प्रश्न ज्यों ही यह उसने
उसके पति गंभीर हो गये
उत्तर की हो गई समस्या
चिन्ता में मझधार खो गये

पर उपहास लिये फिर बोले
क्या लड़का भी अरे ! काम की ?
चीज पराये घर की आखिर
केवल चिन्ता सुबह शाम की

प्यार न संतति हमें इसलिये
प्राणों से प्यारी लगती है
किन्तु जन्म पर कन्याओं के
झुँझलाहट भारी जगती है

इसका मुख्य हेतु है यह ही
है समाज की विषम व्यवस्था
जिसके घर में कन्या उसकी
नहीं सुधरती कभी अवस्था

कपट आभूषण दहेज में
भीषण व्यर्थ चला जाता है
कन्यापाल को पग-पग पर
घरबार लुटा जाता है

एकमात्र कन्या-विवाह में
बिक जाता है हरा भरा घर
सब स्वाहा कर देने पर भी
घर वालों को स्वाद नहीं पर

इसीलिये बचत पीड़ा से
मोल कहाँ झगड़ा लेते हैं ?
कन्या जन्मी यह सुनते ही
नीचे आँख गड़ा देते हैं

न्याय न यह, अपराध भयकर
किन्तु करें क्या, सभी विवश हैं
नैतिकता गिर गई सभी की
एक व्यक्ति का क्या कुछ वश है !

मानव के पावन अंतर् का
स्पंदन ही विवाह है मधुमय
किन्तु आज कितनी कृत्रिमता !
पावनता में गया स्वार्थ घुल

ठेस लगी मानस दुख पाया
याद गई बातें आती थीं
तिरस्कार होता था प्रतिदिन
वह भी कन्या कहलाती थी

और सगाई के अवसर पर
पिता बहुत ही दुख पाया था
जो कह देता घड़ी-घड़ी आ
बार-बार ही भरमाया था

मा कहती थी, तू जन्मी है
उस दिन से हम पाते हैं दुख
इधर उधर भटके फिरते हैं
जिस दिन से देखा तेरा मुख

विदा किया घर से जब उसने
तो जी भर कर पीया पानी
और यहाँ श्वसुरालय की तो
अतिशय दारुण कष्ट-कहानी

ननदों के उपहास विष भरे
धनी सास की वे फटकारें
सुन-सुन कर उर रो पड़ता है
अश्रु छलकते न्यारे-न्यारे

निरुद्देश्य ही बिना काम ही
पति द्वारा मारी जाती है
जिनको सुनकर पत्थर की भी
आत्मायें थर्रा जाती हैं

इसी चिन्तना में ही उसकी
मौन दृष्टि आ पड़ी सुता पर
पानी फेर दिया जावेगा
यों ही इसकी भी इच्छा पर

क्या प्राणों से भी प्यारी यह
योंही सदा छली जायेगी ?
दमन-चक्र में महाशिला पर
योंही सदा मली जायेगी ?

इसकी भी अरुणोदय वाली
क्या क्षण भर में म्लान बनेगी ?
जीवन के पथ पर चल-चल कर
थक-थक कर निष्प्राण बनेगी ?

सारा-साथ नीरस उदास थी
उसे देख चिन्तित व बोले
अरे, कौन चिन्ता जो सोई !
क्या उर में हो गये फफोले !

ज़रा ज़रा सी ही बातों पर
तुम चिन्ता में खो जाती हो
घबराने अन्तर-प्रदेश को
अश्रु-कणों से धो जाती हो

तुम नारी हो हृदय तुम्हारा
तुहिन-कणों से बना हुआ है
मानस के निर्मल अम्बर में
इन्द्र धनुष सा तना हुआ है
किन्तु पुरुष का अन्तर भी तो
घोर घटाच्छादित अम्बर है
उसकी उमड़ घुमड़ का गर्जन
महा भयंकर अजर अमर है

मैं डंठल हूँ मेरी कलियाँ
शीतातप में सूख गई हैं
पर प्रसन्न मैं कब निराश हूँ
क्या मानव की भूख गई है!

यह मीराँ कितनी भाती है
मैं तो कुछ भी कह न सकूँगा!
आँसों से बोझल होने पर
मैं इस जग में रह न सकूँगा
किन्तु सदा रोते रहना ही
मुझे न किंचित् भी भाता है
क्या मानव सुन्दर धरती पर
केवल रोने को आता है?

तुम इसकी चिन्ता चिन्ता में
सब उल्लास गँवा बैठी हो
नीरवता के तमस-लोक में
धीरे धीरे आ बैठी हो

मीरां की माँ लगी सोचने
अनुनय विनय भरी ये बातें
इनकी वैसी की वैसी हैं
यद्यपि बीत गये दिन रातें

मेरे चारों ओर निरंतर
इनकी अभिनव अभिलाषायें
मँडराती रहती हैं केवल
मुझे छोड़ इनको क्या भाये ?
बोली—फिर उपहास व्यंग्य में
क्यों आकर्षण चला गया क्या ?
क्षण प्रतिक्षण अब तन परिवर्तित
शेष रह गया और नया क्या ?

मेरे पीहर में आकर अब
सखियों पर तल्लीन हुए तुम
सभी अरे मैं जान गई थी
विचलित पथ से हीन हुए तुम ?

मंडप-नीचे भी बोले यदि
मिलें दासियाँ मुझको अगणित
तो मैं शकुन मांगलिक करूँ
नवल वधू को सुख देऊँ नित

तुम मेरे पीहर-घर भर को
सभी तरह से भाए गये हो !
घर का कितने ही देखे पर
तुम ऊपर के ठाट हुए हो ?

तेरी ये अलबेली सखियाँ
ज्ञात तुम्हें क्या कहाँ आजकल ?
उनके बिना तुम्हें क्षण भर भी
पड़ता थी कुछ नहीं कहीं कल

बोली वह, क्या करें विवश हम
तुम ठग ठहरे भिन्न निराले
दूर देश ठग कर ले आये
चारों ओर लगाये ताले

सोने के पिंजड़े में सीमित
हुई सुखद झंकार हमारी
नभ के विस्तृत कृष्णाचल में
साथिन छोड़ न्यारी न्यारी

चुपके से पिंजड़े में घुसकर
मीठे बोल सुना जाते हो
अपनी कुत्सित घृणित वासना
तृप्त बनाने ही आते हो ?

दुनियाँ क्यों जाने हम भी कुछ
अपनी अभिलाषा रखती हैं ?
प्यार उसी के लिये रात दिन
रात रात भर भी जगती हैं

पर पुरुषों को मधु की चिन्ता
उनको तो मकरन्द चाहिये
सौरभ ओतप्रोत कलियों की
मृदु पखुड़ियाँ बन्द चाहिये

लगा सोचने, मीरा मेरी
अनजाने घर में जायेगी
और न जाने कितने दिन—
पश्चात् लौट पीहर आयेगी

संगिनियों को छोड़ अपरिचित
जन को परवश प्यार करेगी
उसके जीवन का नीरसता
पीड़ायें दुख भार हरेगा

मा, को भी विस्मृत कर देगी
और नया संसार बसेगा
नई चेतना नई भावना
क्षण प्रतिक्षण प्रतिपल विहँसेगा

और कहूँगी जब मैं बेटी!
यहाँ और रुक जाओ कुछ दिन
हाली के पीछे भेजूँगी
तब वह नीरस सी दिन गिन गिन

दूर देश से किसी व्यक्ति क
आने की प्रतिदिन सोचेगी
किसी काक की काँव-काँव पर
मन में बहुत बलैयाँ लेगी

लेने को आये देवर को
जब कितना ही बात सहेगें
ना' करने पर सभी कहेगा
मा! मुझको व बहुत कहेंगे

और हमारा पथ छोड़ कर
तब सुघर स मिल जायगी
सास, ननद सुख पाती होगी
कह-कह कर माँ बहकायेगी

पीहर को तजते नयनों में
विरह-व्यथा की धार बहेगी
पर प्रियतम के लिये सभी कुछ
मारा बारबार सहेगी

मा का विरह सतायेगा, पर
उस पर मृदु मुस्कान खिलेगी
एक बार का बिछुड़ी दुहिता
कौन कहे कब पुनः मिलेगी?

बोली वह, क्या करें विवश हम
तुम मृग ठहरे मित्र निराले
क्रूर दशा ठग कर ले आये
चारों ओर लगाये ताले

सोने के पिंजड़े में सीमित
हुई सुखद झंकार हमारी
नभ के विस्तृत कृष्णांचल में
साथिन खोई प्यारी प्यारी

चुपके से पिंजड़े में घुसकर
मीठे बोल सुना जाते हो
अपनी कुत्सित घृणित वासना
तृप्त बनाने ही आते हो ?

दुनियाँ क्यों जाने हम भी कुछ
अपनी अभिलाषा रखती हैं ?
और उसी के लिये रात दिन
रात रात भर भी जगती हैं

पर पुरुषों को मधु की चिन्ता
उनको तो मकरंद चाहिये
सौरभ-ओतप्रोत कलियों की
मृदु पखुड़ियाँ मंद चाहिये

लगा सोचने मीराँ मेरी
अनजाने घर में जायेगी
और न जाने कितने दिन-
पश्चात् लौट पीहर आयेगी

संगिनियों को छोड़ अपरिचित
जन को परवश प्यार करेगी
उसके जीवन की नीरसता
पाहायें सुख भार हरेगी

मा, को भी विस्मृत कर देगी
और नया ससार बसेगा
नई चेतना, नई भावना
क्षण प्रतिक्षण प्रतिपल विहँसेगा

और कहूँगी जब मैं बेटी !
यहाँ और कुछ आओ कुछ दिन
होली के पीछे भेजूँगा
तब वह नीरस सी दिन गिन गिन

दूर देश से किसी व्यक्ति क
आने की प्रतिदिन सोचेगी
किसी काक की काँव-काँव पर
मन में बहुत बलैयाँ लेगा

लेने को आये देवर की
जब कितना ही बात सहेगें
'ना' करने पर तभी कहगी
मा ! मुझको वे बहुत कहेंगे

और- हमारा पक्ष छोड़ कर
तब देवर स मिल जायेगा
सास ननद दुख पाती होंगी
कह-कह कर या बहकायेगी

पीहर को तजते नयनों में
विरह-व्यथा की धार बहेगी
र प्रियतम के लिये सभी कुछ
मारी बारबार सहगी

मा का विरह सतायेगा, पर
उस पर मृदु मुस्कान खिलेगी
एक बार का बिछुड़ा दुहिता
कौन कहे कब पुनः मिलेगी ?

'तब मा भी अपनी पुत्री के
सुख में अपना सुख मानेगी
पुत्री भूला पर पुत्री को
तो मा पुत्री ही जानेगी

पीड़ा अत्याचार सहन कर
वह अपने को सुखी कहेगी
मारो पीटो पर वह प्रिय की
चिन्ता में ही लीन रहेगी

यह नैसर्गिक नियम जगत् का
नारी आत्म-समर्पण कर दे
पुरुष संयमी निज पौरुष से
भरी भुजाओं में तन धर दे

पर, नारी चरणों की जूती
निज जीवन में नहीं बनेगी
वह न सकुचित हो रोयेगी
आत्मा का संगीत सुनेगी

इसके लिये अभी से मुझको
इसका ज्ञान कराना होगा
इसकी नैसर्गिक स्वतंत्रता
पर भी ध्यान धराना होगा

एक प्रज्ज्वलित दीप सहस्रों
दीपों को आलोकित करता
था जीवन का आत्म-हनन यह
मुझको बारबार अखरता

इतने में उसके प्रियतम ने
ऐसी कोई बात सुनाई
जिसके कारण हँसते-हँसते
रूप-मग्न आँखें भर आईं

उसको सम्बोधित से करते
फिर मीराँ के बापू बोले
"क्यों तुम जो नित रात दिन
सोचा करती हौले-हौले

ऐसा करना ठीक नहीं है
इससे मन कृश हो जाता है
सभी जानते यों चिन्तन में
कभी न कुछ आता जाता है

इस चिन्तन का दुष्प्रभाव फिर
मीरां पर भी बहुत पड़ेगा
जैसी मां वैसी ही पुत्री
हो जायेगी मन उजड़ेगा

इस नन्हे नन्हे पल्लव को
सदा खेलने दो, खाने दो।
फूल-फूल कर यह खिल खिल कर
वृन्तों पर भी भर छाने दो।

प्रिय गिरधर गोपाल दया कर
यह क्या ऐसा आदत डाली?
सोते जागते उठते चलते
रटनी प्रतिमा काली-काली

मेरे आप भी कम सोले?
भ्रम में ही भूले पड़ते हो
साधारण सी बात रहा पर
जाने क्यों इतना बढ़ते हो?

मुझ को अपनी नन्हा चिड़िया
बहुत-बहुत प्यारा लगती है
साथ-साथ मेरे प्रात हो
ध्यान, चिन्तना को जगना है

लघु लघु स्वर का मृदु मृदु कंपन
आत्मा को पावन कर देता
क्षमा, धैर्य, सतोष सत्यता
अंतराल में शिघ्र भर देता

हरी भरी तृषा दोने में
फूलों का सचय कर लाती
मधुमय फल, पक्वान्न आदि से
फिर गिरधर के भोग लगाती

इस छोटी सी ही दुलहिन ने
अपना प्रिय पहचान लिया है
जग-जीवन क्या है, इसने यो
इसी आयु में जान लिया है

इसका जो संसार पृथक है
उसकी रचना ही न्यारी है
इसे ज्ञात है, जिस अप्राप्त को
जगती खोज-खोज हारी है

इसकी साथिन गुड़ियों के ही
खेलों में खोई रहती है
जग के सुख-दुख, हर्ष-कष्ट में
डूब-डूब बहती रहती है

पर इसकी एकान्त-साधना
इसके पूर्व जन्म का फल है
क्षुधा पिपासा लोभ, मोह में
इसका कभी न मन चंचल है

यों ही कह दमे पर इसने
उसको प्रिय आराध्य बनाया
ऋषि मुनि जीवन में भी जिसकी
नहीं जान पाये कुछ माया

समझाऊँ भी तो कह देती
मां ! तुमने ही तो बतलाया
इसमें टाप नहीं, यह तो सब
है उस ही ईश्वर की माया

मस्तक पर टिक्किया चन्दन की
लगा, हाथ में ले कर माला
यों लगती मानों जगती में
ढूँढ रहा शाश्वत उजियाला

चरणामृत में तुलसी लेना
तो यह कभी नहीं बिसराती
प्रतिमा का परिक्रमण प्रात में
सायं यों दो बार लगाती

आश्चर्यान्वित वे फिर बोले
मैं जब जो देता हूँ पैसे
वे सबके सब ही प्रतिमा पर
रख देती बस के बस

उनकी कुछ भी चीज न खाती
कभी न रखती है वे गिन गिन
यह गिरधर की भक्त निराली
यह तो पक्की बनी पुजारिन

इसी बीच में सहसा मीराँ
सोते-सोते बोली, बहकी
माना अर्धरात्रि में कोई
चिड़िया चोंच खोल कर चहकी

बार-बार ही हँसी खिलखिला
फिर गंभीर बनी चिन्तामय
उन दोनों ने देखा इसको
हुरे स्वप्न से हुआ कहीं भय

मीरां

आशंका थी चेत करा कर
लगे पूछने भय का बातें
वह बोली निर्लिप्त भाव से
मा ! मुझको श्रीकृष्ण बुलाते

कालिन्दी के रम्य पुलिन पर
तरु-छाया में वेणु बजाते
हरी भरी कोमल दूर्वा पर
वट-बैठे धेनु चराते

उनकी ओर अग्रसर होते
ही घनश्याम भयंकर छाया
धूमिल अथवा लीन दिशाएँ
अस्त-व्यस्त पथ पर तम छाया

भूल गई पथ मिला न कोई
डांवाडोल हुई मन हारा
रोई, पल प्रतिपल रोई सब
गिरधर ने द दिया सहारा

तिमिर तिरोहित ज्योतिर्मय जग
ज्यों के त्यों वे थे मुस्काते
गायन स्वर-लहरी में भूले
प्रतिपल अपने पास बुलाते

मात पिता निश्चल, अवाक थे
दोनों देख रहे न अघाते
उनके उर में वही रागिनी
मा ! मुझको श्री कृष्ण बुलाते



तृतीय सर्ग



बीज के मानस में अम्लान
नवल अंकुर का अरुणिम प्रात
पुन क्षण प्रतिक्षण क्रमिक विकास
स्निग्ध व बनते अंकुर पात

और उन पत्तों का उल्लास
विवर्द्धित होकर बनता फूल
फूल में गंध रूप रस स्पर्श
समय पाकर होवे फिर धूल

धूल का फूल, फूल की धूल
यही जग का अव्याहत मूल
फूल है सूक्ष्म धूल है स्थूल
नाम दो किन्तु एक ही फूल

न जाने कब से यों अविराम
चल रहा है छाया धूप!
सृष्टि से नित नवीन निसर्गों
चित्रपट पर अंकित हो रूप

प्रात की अंतिम रेखा रात
रात की इति थी पूर्ण प्रभात
एक ही वस्तु उदय ये अस्त
एक ही चक्र-भ्रमित दिन रात

जगत् को किन्तु अनारी रात
विभाजित किये पतन उत्थान
गया बन प्रात स्वर्ण विहान
अस्त को मान लिया अवसान

सृष्टि का आदि न और न अंत
जगत् निस्सीम न इसका पार
किया सुविधानुसार ही स्वयं
मनुज ने यह सीमा-विस्तार

अरे मानव ही स्वयं अपूर्ण
निम्न है उसके ज्ञान विचार
तरी कागज की क्षुद्र समान
अब्धि को क्या कर सकती पार ?

संकुचित सीमाओं में नित्य
घूमता मानव बारबार
और उन सीमाओं का द्वार
बन रहा है संसृति का पार

जहाँ से चलने का आरम्भ
वहीं पर आ जाते सब घूम
सभी की अपनी-अपनी चाल
सभी की आशाओं में धूम

मनुज का यह विनाश निर्माण
सुनिश्चित जिसकी अपनी माप
माप से पहले या मँझधार
स्खलन है जीवन का अभिशाप

कुसुम की गति का हो आरम्भ
उधर झड़ने को होवें पात
सुमन की अभिलाषाएँ शेष
व्यथा उर में करतीं आघात

झुलस कर पत्ते जाते सूख
मुकुल रहती एकाकी मौन
निरन्तर हिम कण आतप शीत
कष्ट देते पर रुकता कौन ?

बालिका की जननी अवदात
हुई ज्यों ही झड़ने को पात
मुकुल मीराँ उसकी असहाय
सहेगी कैसे हिमकण, वात ?

दृगों के आगे तम का नृत्य
हृदय में गहरा पश्चात्ताप
सिकुड़ कर बना गात्र ज्यों शूल
व्याप्त अभिलाषाओं में ताप

किये कितने ही सतत उपाय
मुकुल आई पर्णों के बीच
अविकसित मुकुल, पर भी म्लान
न पाई पर्णों से रस खींच

एक कोने में निश्चल मग्न
हृदय के भाँति भाँति के भाव
बुदबुदे उठते, होते लीन
बना मानस में करते घाव

रात को जो आया था स्वप्न
उसी की हो चिन्ता उग्र व्याप्त
चिन्तन में मीराँ थी चुपचाप
हुआ हो जैसे अमृत प्राप्त

यामिनी स्तब्ध चन्द्रिकालीन
रजत सा फैला विस्तृत जाल
चल रही थी समगति से नाव
पवन अनुकूल दे रहा ताल

लहरियों पर तिरती थी शुभ्र
मंद तरणी ज्यों राजमराल
कुमुद-कुल का कमनीय सुहास
तरी का चारु विशुद्ध प्रवाल

निरख कर मीराँ थी तल्लीन
गूँजते थे वीणा के तार
पास में बैठे थे प्रिय मौन
नयन थे चार दृगों में प्यार

किन्तु परिवर्तन हुआ अकाल
वायु सहसा ही डोला नाव
तरंगें हुई चपल उत्ताल
पवन का भी प्रतिकूल प्रभाव

कुमुद-कुल की कलिकायें पुष्प
टूट कर हुए शून्य में लीन
भीम झंझा का यातायात
व्योम हो गया सुधांशु विहीन

अभ्र जल कणों में सघन
छा गया महातिमिर घनघोर
तरी उद्वेलित हुई अशान्त
रह गया था मझधार न छोर

उलट कर नाव हुई जलमग्न
हुए प्रिय भी सहसा अज्ञात
रह गई एकाकी जल-थाप
अकेली मीराँ परवश-गात

अब्धि का भीम उतार-चढ़ाव
वीचियाँ नागिन की ज्यों लाल
स्वप्न हो गया अचानक भंग
नयन ज्यों दिये किसी ने खोल

कई दिन पीछे का यह स्वप्न
आज भी छेड़ रहा था तान
चित्र की भाँति एक पर एक
संस्मरण आते जाते म्लान

करवटें लती बारबार
स्मरण का नहीं टूटता तार
श्रवण-पुट में वह ही ध्वनि एक
दृगों में वही स्मरण-संचार

पिता सारों के कहते बात
रचेगा धूम धाम से ब्याह
' अश्व गज ग्राम दासियाँ भृत्य
सुता को देंगे जितनी चाह

एक ही सुता का सम्बन्ध
करेंगे व्यय अनुपम धन धान
देख कर सभा करें आश्चर्य
सुन ना खुल जायेंगे कान

सोचती यों हो जाती खिन्न
सुता को बुलवाती फिर पास
शीश पर हाथ फिरा, मुख चूम
मनोरम करती हास विलास

खिलाती और पिलाती नित्य
करों से हा नित भोजन-पान
दृगों में दगी अंजन मंजु
कराती हाथों से ही स्नान

कथा करती मीरां अनुरोध
सुनाओ मा! गिरधर की बात
वही जिसमें जन्मे थे कृष्ण
अँधेरी थी भादों की रात

सुता का भोला भाला चाव
वहा ले जाता मा को दूर
सुता सुनती, मा कहती बात
कृष्ण-लीला में दोनों चूर

कथा में भूला स्वच्छ स्वभाव
निरखती मा, जाता अवसाद
बालकों में कितना विश्वास!
गये बचपन की आती याद

नित्यप्रति का यों निरख दुलार
सुता की चाची, ताई श्रार
पास की महिलाएँ अविराम
बात करतीं व्यंगात्मक धार

अरे यह तो है पुत्री मात्र
कहीं हो यदि सुत ही संतान
चरण रखती न धरा पर कौन
कहे कितना होता अभिमान!

जनों की आलोचना, कुरीति
श्रवण कर होता उसको खेद
सोचती रखते क्यों हैं लोग
पुत्र-पुत्री में इतना भेद!

पुत्र के ही क्यों लाड़ दुलार?
सुता का क्या कर आई पाप?
वही क्यों तिरस्कृता हतभाग्य
लिये रे जीवन में अभिशाप?

तृतीय सर्ग

एक पुत्रों का हो परिवार
चला सकता है क्या संसार ?
कहाँ है पुत्री जैसा प्यार ?
सृष्टि की दुहिता ही पतवार

दिवस, फिर रात दिवस फिर रात
यह होता रहता अज्ञात
डूबते तिरते ये जन जात
जगत का बहता सतत प्रपात

हुई वह सहसा ही निर्जीव
एक दिन लिये ललाम विचार
हृदय में अभिलाषाएँ दिव्य
स्वजन के प्रति संचित सब प्यार

अकेले पति बैठे थे मूक
स्नेह जीवन का हुआ समाप्त
पूर्व-जन्मों के कोई पाप
खो गई सौरभ होकर प्राप्त

कर्ण-कुहरों में गुंजित एक
नष्ट होते जीवन का गान
दृगों के आगे स्वयं विहान
दृगों के आगे ही म्रियमान

मृत्यु का भीषण प्रलय-प्रवाह
बहा ले गया मधु यह मूर्त
यहाँ ही गई स्वयं अब मात्र
सदा भरती रहती जो स्फूर्ति

शून्य के अंचल में विश्राम
सभी लेते यह नियम अटूट
सुविकसित सुरभित कुसुम-पराग
कहीं ले जाता कोई लूट

मीरा

नित्य मानव द्वारा यह खोज
ज्ञात है वह ऐसा अज्ञात
अचानक हर लेता जो प्राण
छोड़ देता है नीरस गात ?

अभी यों का त्यों रहा रहस्य
गये युग पर युग युग ही बीत
सका कोई भी हम न जान
अभी भी उलझन के गीत

किया न यत्न में किये उपाय
किया न जग में किया निवास
रहे असफल ही मिला न द्वार
हुए थे सभी मृत्यु के ग्रास

इसी असफलता के हो नित्य
गीत गाये जाते अभिराम
अमरता सुन्दर स्वप्न विभोर
जगत् था मिला नहीं आराम

दग्ध मन प्राणों के उद्गार
सभी इच्छाएँ उसकी शेष
हुआ कब उसका पूर्ण विराम ?
श्वेत हो पाये नहीं सुकेश

उसी की तन विभूति के साथ
विजन में खोये मेरे प्राण
चिता की ज्वालाओं पर व्यर्थ
करूँगा मैं न नाद-निर्माण

निर्गम आत्मा का रमणीक
नहीं तो लुट जायगा श्याम
धरा में पड़ी रहा चुपचाप
मृत मारा ज्यों मृगछाला

उसे आई थी मीठी नींद
हो रही अन्यमनस्क अजान
न जाने क्यों अत्यन्त उदास ?
साँस था उष्ण भ्रमित सा ध्यान

रुदन क्रन्दन हा हा चीत्कार
सुने थे उसने चारों ओर
न खाया, पाया शिथिल शरीर
न जाता मुख में कोई कौर

एक भी माँ' का करुणा-गीत
रहा गा प्रतिपल बारबार
श्रान्त निद्रा में नीरव मग्न
हो गई थी वह क्या उपचार ?

उन्हें तो भी यह ही अनुरोध
यहां भी कब आयेगी लौट ?
सुता के व्यथा प्रपूरित शब्द
पिता का गला रहे थे घोंट

बनी कर लिया गया था व्याज
तुम्हारा भी नाना के गाँव
रुदन के आगे उसके किन्तु
न चल पाते थे कुछ भी दाँव

सभी का जाना है जिस गाँव
न बतलाया उसका कुछ नाम
चराचर क्षण भंगुर म्रियमाण
किन्तु उस पर भी जीवन धाम

अरे यह जीवन का प्रासाद
दूर जाना पड़ता है छोड़
चिरन्तन नाता पाद पूज्य
नहीं रस पाया कोई जोड़

खेलता स्वप्नों से अभिराम
मनुज में कितनी ममता मोह !
विषय करते, सत मन जीत
विपथी के अवरोहारोह

निपट के करते स्वजन दुलार
किन्तु उसका जीवन सुनसान
बालिका लघु-लघु पद सुकुमार
गई जाने कैसे पहिचान ?

निभृत कोने में बैठी शान्त
ताकती सदा क्षितिज का छोर
पिघला कर अन्तर्ग्रह जाता स्वान्त
एकटक मौन दृगों की कोर

गगन में उड़ते मत्त विहग
वाटिका में सुमनों का सार
दिव्य तारे करते संकेत
किन्तु उनसे कुछ रहा न प्यार

उसे लगता जैसे निर्जीव
जा रहा है यह बहती दूर
एक गिरधर-प्रतिमा से नित्य
रहा करता जीवन भरपूर

सलोनी कलिका सा मृदु गात
जोड़ कर-युगल और नतभाल
मूर्ति के आगे गाती गान
मेरा चाकर गिरधारी लाल !

सहेली, साथी जयमल साथ
खेलता आँख मिचौनी खेल
कृष्ण सा होता अवधान
हँसी गाती सुख-दुख मेल
५

तृतीय सर्ग

एक दिन बैठे दोनों साथ
बहन भाई करते थे बात
कहानी का चल रहा प्रसंग
सुनी थी दोनों ने जो रात

इसी अंतर में एक बिलाव
लिये पंजे में एक कपोत
भागता दिया दिखाई दूर
कबूतर को आई यों मौत

उठ दौड़े दोनों जी ताड़
मृत्यु के मुख से किसी प्रकार
छुड़ाया उसको, वह था खिन्न
पड़ा कोने में, ले आभार

बहन भाई की हुई सलाह
पिलावें आओ, इसको नीर
चुग्गा के दाने दिये बिखेर
चुगाने का कपोत के तीर

कर रहा मीरों उसको प्यार
हुआ फिर भी वह तो भय भीत
क्या सकता वह कुछ भी जान
बहन भाई की निश्छल प्रीत

बहुत ही था जयमल उद्दंड
किन्तु मीरां के आगे शान्त
समाता अंबर में चुपचाप
भीम बाधक गतिमय, दुर्दान्त

सुता थी दादाजी को सौंप
पिता थे व्यस्त राज्य का काम
राव दूदाजी थे अति वृद्ध
एक ही काम राम का नाम

वृद्ध बालक में बाबा भद्र
बाल में आशा वृद्ध निराश
निराशामय कठल पर कान्त
मरण कापल का हुआ विश्राम

वृद्ध के जीवन की अनुभूति
लिये थी अति ही प्रचुर प्रभाव
झलकती थी होने अभिव्यक्त
इधर थ जिज्ञासा के भाव

वृद्ध नित करते थे जप ध्यान
रहा जीवन का अन्तिम भाग
चयन कर लाता सूखा फूल
भक्त गानों नैनों में राग

ताप-त्रस्ता बालिका को पूर्ण
गई मिल तरु की शीतल छाँह
किये जाता था पथ-निर्माण
पथ-बाधा का पूर्ण प्रवाह

साथ उठ जाते सोते साथ
साथ ही जप तप पूजा ध्यान
साथ ही काम साथ आराम
भक्त थे व दो ही भगवान्

एक था दुनियाँ से अनभिज्ञ
दूसरा सांसारिक विद्वान्
हो गये माना तिलक जीर्ण
इसलिये नया भी निर्माण

अन्य वर्षों का अति निर्णय
पत्र उस कारा हो रचित
भूमि पर बाओ जैसा बीज
निर्द्वन्द होगा बस गेह

जगत् विनिमय का क्रिया-केन्द्र
सभी के ही गुण आप स्वभाव
परस्पर खिंचते लाते खींच
पक्ष करता अन्योन्य प्रभाव

उमड़ता निर्मल पारावार
बालिका उसमें जाती डूब
आ गया था उसका आनन्द
शब्द भी नहीं रहे थे ऊब

कथा में पूछ लिया यह प्रश्न
कृष्ण क्यों लेते हैं अवतार ?
मनुज हो जाते हैं पथ-भ्रष्ट
धरा भी सह न सके जब भार

तभी वे लेते जग में जन्म
चक्र को कर में लेते धार
भक्त को लेते आप उबार
राक्षसों को देते हैं मार

आप तो कहते सदा समान
कृष्ण सब से करते हैं प्यार ?
करें क्या कभी किसी का त्राण ?
किसी को क्यों यदि वे मार ?

कौन राक्षस कैसे हैं भक्त ?
भक्त वे जो करते सत्कार
और राक्षस होते दुर्दान्त
कृष्ण को भी देते दुत्कार

भयङ्कर होते बड़े पिशाच
मार कर खा जाते सब जाव
जनों का गला घोंटते व्यर्थ
रक्त पी करते नाच यताव

दमन शोषण से हाहाकार
गूँजता यहाँ, वहाँ उस पार
सज्जनों का करने परित्राण
कृष्ण तब लेते हैं अवतार

हृदय में उठते रहे विचार
बालिका पर न पा सकी पार
राक्षसों के नख शृङ्ग अपार
भयाकुल करते बारबार

प्राकृतिक उत्कण्ठा-वश मौन
न रह पाई बोली यों बात
रात को जलता जब तक दीप
छिपकली भी तो करती घात

जन्तुओं के हरते हैं प्राण
नित्य प्रति कुत्ते और बिलाव
रात भर छिप-छिप कर चुपचाप
वनों में जन्तु देखते दाँव

भीम ने दुःशासन का रक्त
लिया था पी अंजलि भर तौन
आप ही तो कहते थे बात
मौन की वैरिन होती मौन

सिंह, चीतों को दिये न दन्त
मृगों का कब करते प्रभु त्राण ?
सरलता-वश बोला यह सुता
सदा हरते रहते ये प्राण

अत्यधिक हुआ उन्हें आश्चर्य
साफ नास्तिकता का सा बात
लगे उनका ये तर्क अकाट्य
इसे कैसे इतना यह ज्ञात ?

कहा पगला ! पशु हैं ये मूर्ख
नहीं इनमें मति, ये अनजान
रहा करता पशु का पशु भक्ष्य
नित्य की घटना पर क्या ध्यान ?

कृष्ण का ही यह माया जाल
सभी करने वाले भगवान्
करे जो इन बातों पर ध्यान
नष्ट होता उतना ही ज्ञान

कृष्ण का बाल विनोदी खेल
किया जो कालिन्दी के कूल
सुनाते थे तन्मय वे वृद्ध
किन्तु यह उमर्म सका न भूल

समझ में आया कुछ न विराट्
सभी करने वाले भगवान्
वही मकड़ी का तनते जाल
वही मक्खी के हरते प्राण

पान करते हैं राक्षस रक्त
नित्यप्रति, देखे जब तब मार
रक्त पीने वाले भगवान्
कृष्ण ही खाते रहते हार

कहें दादाजी, शाश्वत ब्रह्म
ब्रह्म से जग का प्रादुर्भाव
ब्रह्म में ही होता जग लीन
जगत् के नश्वर हैं सब भाव

ब्रह्म है क्या कैसा आवास ?
ब्रह्म का क्या आकार प्रकार ?
ब्रह्म में ही होना लय लीन
व्यर्थ हैं सब आचार-विचार

चतुर्थ सर्ग

★

आज प्रफुल्लित कलि उपवन की
आओ मधुलिह्, तान सुनाओ!
ऋतु आई मधुमय गुंजन की

चू-चू पड़ती लघु-पंखुड़ियाँ
कण-कण में सौरभ की लड़ियाँ
सह सकता न प्रतीक्षा-घड़ियाँ
पूर्ण करो अभिलाषा मन की!
आज प्रफुल्लित कलि उपवन की

आज मांगती यह आलिंगन
कर-युगलों में बन्द करो तन!
प्राण हुए व्याकुल जीवन-धन!
इच्छाएँ सौ-सौ चुम्बन का
आज प्रफुल्लित कलि उपवन की

पल्लव-शय्या सरित्-किनारा
सुन्दर वेला छाया घन की
आज प्रफुल्लित कलि उपवन की
ऋतु आई मधुमय गुंजन की

कृश कटि का शत-शत परिवर्तन
मन को आकर्षित करता था
नयनों का पीड़ा हरता था
मारुतप्रेरित नव पल्लव की
अभिराम लहरियों सा नर्तन

कटि की किन् किन् पायल के स्वर
पग-पग पर मधु बरसाते थे
कामिनियों को तरसाते थे
हर्षाते थे सरसाते थे
या बरस रहा मधुरस झर झर

मधु बालाओं का सम्मेलन
जिसमें गुंजित कल तंत्री पर
प्रत्येक किशोरी का अवसर
उल्लास हास हावों भावों
से पूर्ण परस्पर कल केलन

गायन-स्वर-लहरी रुकते ही
व्यंग्यों में संगिनियाँ बोली
लगता तो हो भोली-भोली
प्रिय का आवाहन कर डाला
उर में मंजरियाँ उगते ही

अपरा ने ली वीणा कर में
संगायन का ताना बाना
जो टूट गया था मनमाना
सम्मिलित हुआ फिर बिखर गया
देखत देखत क्षण भर में

विद्युत् ने अवगुंठन खोल
सतरंग का सुन्दर अंचल
दूर दूर उड़ता फिर चंचल
विजन पवन की भाँति भ्रान्त
मन भी डोले तन भी डोल

कुंचित मुख पर अंकित ब्रीड़ा
अंतर् में सुन्दरतम क्रीड़ा
नयन अयन नासिका श्वास में
कुच कुल में मादकता घोले
विद्युत् ने अवगुन्न खोल

प्रिय ने तापित कर फैलाये
मंजु घोष प्रिय-स्वर मँन्राये
बोली बलखाती हँसती सी
बोलो प्रियतम हौल हौल ?
विद्युत् ने अवगुन्न खोल

सब संगिनियाँ मुस्काती थी
तुम भी कलिका चम्कीली हो
सुरमीली और रँगीली हो
यों व्यंग्यों की बौछारों में
वह भी हँस-हँस कर गाती थी

धन्या कलिका की धारा थी
पति-गृह में वह आई हा थी
मधु-संचय कर लाई ही थी
ननदें करतीं उपहास किन्तु
वह भाभी सबसे प्यारी थी

उसने बाँधे बिछुवे पग मे
अँगड़ाई के मोहक दर्शन
आ रहे जीतते अन्तर्मन
संगीत-पूर में डूब गई
स्वर ताल भरे थे डग डग में

प्रियतम मेरे अब आयेंगे
नीरव अँधियारी रातों में
मधुमय उन्मत्त प्रभातों में
मन्मथ जननी बरसातों में
वे प्रेम-वृष्टि बरसायेंगे

मद भरी रसीली चितवन से
अलकों से, प्रिय अवगुंठन से
हृदयस्पर्शी मुस्कुम्बन से
कर्तव्य-मूढ़ हो जायेंगे
प्रियतम मेरे जब आयेंगे

जितनी छोटी उतनी खोटी
लज्जा का बिल्कुल लाँघ गई
सीमा से आगे टाँग गई
जितनी बाहर, उतनी भीतर
कुछ कुछ पतली, कुछ कुछ मोटी

सुन जान न पाई हो बातें
उनमें से दो सखियाँ बोली
नैनों का कम्पमस थी चोली
तीखे कटाक्ष की धारों से
खुद खुद करती करती घातें

मीराँ पर सब यह ताना है
लड्डू कब दिये सगाई के ?
भूखे ही रहे मिठाई के
मुख मीठा किये बिना सोचो,
कोई गा सकता गाना है ?

यह बात पते की कह डाली
बन्धन में बँध कर भूल गई
आगमन—याद में भूल गई
कैसे किसको लड्डू दे ए
जब प्रिय के पास रही खाली ?

ज्यों ही ऐसा ताना मारा
सब लगीं ठहाके से हँसने
संकेतों में कटाक्ष कसने
सब एक ओर, पर मीराँ का
भर गया लाज से तन सारा

अब नहीं रही मीराँ बच्ची
विधु का प्रतिबिंब हुआ नव मुख
नासिका, दृगों के बदल रुख
यह भी सर्वथा संगिनियाँ
को कह सकती सच्ची सच्ची

ऐसी बातों में चाव हुआ
युगल कंदुक से स्तन कर्कश
उभरे वक्ष—स्थल पर समरस
पलकें नीची, मथर मथर
चलने का मनहर भाव हुआ

यह श्रव चुपचाप सजाता है
उसकी मुस्कानें मधु भीनी
श्रधरों में हा सीमित झीना
प्रिय के अनुराग-सनी चंचल
बाहर कम श्राता जाती है

स्वर्णिम दीपित वस्त्राभूषण
श्रावरयक अंग हुए तन के
श्रभिव्यक्त भाव करते मन के
रस चित्रित मृदु कर प्रिय का
श्राह्वान किया करते क्षण क्षण

तन मन में गतिमय श्रल्हड़ता
मृदु विकच कुन्तलों का सौष्ठव
भ्रू-भंगों को देता छवि नव
जंघा की स्फीत शिराश्रों में
नव स्पन्दन, दूर हुई जड़ता

ये शुभ्र-पक्ष का शिव रातें
जिनके मृदु अंचल में तारे
तल्लीन हुआ करते सारे
शय्या पर जगती रहती सो
जाना करता मन की बातें

श्वसुरालय से पीहर श्राती
जितनी भी नव दुलहिन परिचित
उनके सम्पर्कों में वह नित
प्रिय की अनुभूति-भरी बातें
सुन सुन कर श्रविरल सुख पाती

पीपल घट सींचा करती है
गर्मी की जलती लूओं में
जब जग जल जाता धूपों में
अंगारों की ज्यों लाल लाल
तप कर हो जाती धरती है

तप में नित देह गलाती है
कातिक में प्रात स्नान ध्यान
व्रत, नियम प्रार्थना अन्नदान
उत्तम सुन्दर प्रिय मिलें अतः
मन्दिर में दीप जलाती है

शुभ शाश्वत अमर सुहाग मिले
सन्ध्या-पूजन का ध्यान सरस
आकर्षित करता है बरबस
संगिनियों में हिल मिल गाती
प्रिय का मधुमय अनुराग मिले

हाथों से दूब उगाती है
दूबा सा हरा भरा जीवन
दूबा जैसे फैलें परिजन
चिड़ियों को मोर कपोतों को
निज कर से अन्न चुगाती है

सावन का मास सलोना था
घन मालाएँ घिर आई थीं
ऊपर अम्बर में छाई थीं
रिमझिम रिमझिम अमृत-स्वर से
गुंजित घर घर का कोना था

उनमें से एक सखी बोली
अबकी मीराँ की है बारी
गा दो कोई कविता प्यारी
ऐसा जिससे लहँगा नाचे
दामन टूट बिखरे चोली

सचमुच कविता की बेला है
सबका ही सुनने को आतुर है
सब मोर पपीहे दादुर है
घन घोर सभी के नयन लगे
कामातुर हृदय अकेला है

शुभ चिन्तन कवि-सम्मेलन की
तुमको कविता की चाह बढ़ी
पर मीरा अपनी राह पड़ी
पिय-पथ पर इसका ध्यान लगा
चिन्ता है 'चकला बेलन' की

सखियों की विविध ठिठोली में
मीराँ ने अपना मुख खोला
भावों का शतदल-दल डोला
गम्भीर हुए, स्वर मधुर बना
मानो रस पड़ा निमोली में

परियों का मेला पनघट पर
कोमल मनहर सुर-बालाएँ
लहराता स्तन पर मालाएँ
आती रहतीं जाती रहतीं
मतवाली भर घट पर घट धर

मीरा

नीरस से पनघट के चमके
रूप छटाओं से भौचक्के
रक्त चित्रित हस्त स्पर्श से
मृदु रव कर चलते टट टटकर
परियों का मेला पनघट पर

आनेवाले रसिक जनों के
जानेवाले रसिक जनों के
बारबार नयन मँडराते
कामिनिया के घूँघट-पट पर
परियों का मेला पनघट पर

सब हुई प्रभावित धन्य कहा
यह अभी अभी जो गाई है
कविता क्या नई बनाई है?
स्वर क्या है भाषा भी मधु है
अमृत रस कविता जन्य अहा!

गायन भी आता नर्तन भी
वीणा के सप्तक-स्वर करगत
कविता रचने में मधुमन-रत
गोरा गोरा मादक मृदु तन
मुग्ध नयना के फल कमन भी

तुमको पाकर कृतकृत्य हुए
तेरे चरणों को चूमेंगे
पीछे पीछे ही घूमेंगे
तुम गृह-लक्ष्मी हो रानी हो
पर आजाओ तो भृत्य हुए

पर, सुनते हैं ये काले हैं
चपला ने सहसा व्यंग्य किया
विधि ने ऐसा क्यों रंग दिया ?
पर ठीक ठीक धन्या बोली
ये राधाजी के ग्वाले हैं

इस पर मन्द यों भाभी बोली
कलि का तन होता मतवाला
पर अलि का तन होता काला
काले होते दूखे भाले
मीराँ वाली बस हद हो ली

सुन्दर सा गीत सुनाती हूँ
कह कर भाभी यों मुस्काई
पर मीराँ कब भगने पाई ?
बोली भी दूर हुई जाती
है काम, अभी आ जाती हूँ

काले प्रिय तो सुन्दर सजनी
सुन्दर प्रिय तो काली सजनी

सुन्दर प्रकाश काला छाया
काला मधुकर सुन्दर कलिका
सुन्दर निर्झर काला कमाद
काला जलधर सुन्दर धवला

काला किरपी सुन्दर लतिका
काला धूँआ सुन्दर ज्वाला
राधा गोरा, काल माधव
सुन्दर निशिपति काली रजनी

मीरां

काम सुन्दरता के लोभी
जगती में जितनी वस्तु मधुर
उनका रस ले लेते मधुकर
योगियाँ वहाँ मिल जायेंगी
मधु होगा जहाँ जहाँ जो भी

बाईजी, यह तो बतलाओ
मीठा मुख कब करवाओगी ?
क्या चुपके यों ही जाओगी ?
इस पर अम्बा बोली भाभी !
घर-गुण गाओ लड्डू खाओ

यह कैसे किसको मधु बाँटे !
इसकी झोली में दाम नहीं
फिर अभी इन्हें आराम नहीं
ये लायेंगे, तब दे दूंगी
अब तो इसको ही है घाटे

इस पर चपला की बन आई
बोली तुम भी मधु की लोभी
मधु-लोभी परदेशी यों भी
यह किस किस को मधु-दान करे ?
मझधार रहा मीरां बाई

अपरा ने यों फिर बात कही
पहले ही लाखों लो लाखों
ये काम मिठाई के काले
पग घूम ज्योंही पर-पथ पर
यह बिगड़ी समझो रही सही

चपला ने फिर मारा ताना
यह क्यों लोगों को भाटगी ?
होने प्रिय के सुद चाटगा
तुम कौन बीच में हो काना
जब रहे मियाँ बीबी राना ?

धन्या ने भी अवसर देखा
बोली ऐसा मालूम होता
दम्पति से, तो मैना तोता
हो गया तुम्हारा समझौता
तुम दोनों की सिखला रखा

मीराँ क्रोधित तत्काल हुई
बस रहने दो ऐसी बातें !
तुम व्यंग्य करो भाते भाते !
उठ पड़ी शीघ्र चल पड़ने को
मुख सहसा आँखें लाल हुई

सखियों ने हँस कर पकड़ लिया
हम पर हो तुम क्रोधित हो क्या
हम सब जानें उनसे बोलो !
भोली रानी जी रूठ चली
ज्यों देखा कह जकड़ लिया

क्रोधित होने में कारण है
प्रियतम की हँसी उड़ाती हो
काले काल बतलाती हो
अपनी को सुन ले पर प्रिय की
सुनने में पाप अकारण है

पतिव्रता वधू का धर्म यही
प्रिय का चिन्तन प्रिय का ध्यायन
प्रिय की कविता, प्रिय का गायन
प्रिय को सबसे ऊपर माने
नव दुलहिन का सत्कर्म यही

यह सब कुछ जाने बैठा है
हाथी के दाँत दिखाने के
हैं और और हो खाने के
यह तो ठहरा तिरिया चरित्र
सब जाने क्यों यह ऐंठी है ?

क्या हाल चाल हैं सुखदा के ?
प्रिय की बातें हम करती थी
तब वह भी बातें करती थी
श्वसुरालय कभी न जाऊँगा
कहती थी सदा रहूँ माँ के

तुम पर अपना हँस कर बोली
है दो मासों से श्वसुरालय
कर रहा आम्र कल मधु-सञ्चय
थोड़े दिन में ही उन्नति की
उसने तो भर ली है झोली

सबने सीखी मुस्कान भरी
नयनों की भाषा तीखी थी
पर मीराँ मुख श्री फीकी थी
धरती में गड़ती जाती थीं
लज्जित पलकें चमजाम भरी

यह कविता जरा सुना दो तो
मीरा से भाभी यों बोली
चपल आँखें हँस कर डोली
आओ, आओ प्रियतम प्यारे!
यह मोहनवाला गा दो तो!

इनको जगती फीकी लगती
इनका यह ही बस कहना है
जग में थोड़े दिन रहना है
बस इसीलिये ये दूर दूर
ही ऐसी बातों से भगतीं

सच है दुनियाँ से क्या मतलब?
नटवर, नागर मोहन गिरधर
हैं जन्म जन्म के इनके वर
यह तो उनपर ही लट्टू हैं
ये भी इनसे बिछुड़े हैं कब?

कवि की कल्पना निराली ही
इनकी बातें सिर पैर हीन
उनमें ही रहती सतत लीन
ये नहीं समझती रहे उदर
आहार बिना तो खाली ही

पर उनने तो अवतार लिया
थाई दिन में खाने वाले
घर ही सुन्दर हैं काल
भक्तों की पीड़ा हरने को
उनने मानव तन धार लिया

बातें अब मत निस्सार करो!
अलि गया काल व्यतीत हुआ
प्रिय हो प्रिय का क्या गात हुआ ?
लोगों को तुम पीछे छेड़ो
पहले अपना उपचार करो!

इसका उत्तर दती दती
भाभी चपला से यों बोली
सचमुच हो बहुत अधिक हो ली
होगा विवाह तो इनका तुम
झूठी बातों में क्या लती ?

आओ न चलो झूला झूलें
पर, एक बात है यह आली
हम नहीं डरेंगी यों न्याली
लड्डू न सही कविता ही हो
जिसमें मन नभ को तो छू ले

कविता में भी यह है बन्धन
कविता जो हो रसमय ही हो
प्रिय के प्रति मधु-संचय ही हो
पीड़ा सुलझाने को गाया
परवश मारो न यों उन्मन

जो हृदयों में जगमग जगमग
ऐसा प्राण है प्रेम न्याली

हृदय चाह को मनारियों पर
नव विलास उल्लास प्रफुल्लित

कूक रही है फुदक फुदक कर
अभिलाषा-कोकिल मतवाला
दो हृदयों में जगमग जगमग
जला आज है प्रेम दिवाली

जीवन के नीरस मरुघर में
नव विटपों को स्नेह-नीर से
ओतप्रोत कर आशाओं की
बही आज स्वर्गंगा आली !

दो हृदयों में जगमग जगमग
जली आज है प्रेम दिवाली

चीर फार कर तिमिर निराशा
स्वर्णिल सित अभिनव किरणों से
नवल प्रेम के उदयाचल पर
उदय मनोरम मरीचिमाली

दो हृदयों में जगमग जगमग
जली आज है प्रेम दिवाली

अति दूर दूर उड़ता था पट
सब साथ उठीं झूलने लगीं
अल्हड़ थी सुध भूलने लगी
दोनों तन जोर लगाते थे
थे झाँक रहे उर घट कटि-तट

सुन्दरता यों ही लुटती थी
गोरा-गोरा निर्मल यौवन
था लुटा रहा सौरभ उपवन
पेंगों पर पेंग बढ़ाने जब
कंचन-कामिनियाँ जुटती थीं

५

मीरां

ऐसे ही रहती चहल-पहल
साथिनें सदा मिलती रहतीं
आपस में ही खिलती रहतीं
मुस्कान बिखेरा करता यों
बैठी-बैठी या टहल-टहल



पचम सर्ग

★

उन्मनी सी आ रही मीरों वधू ससुराल
हृदय सागर का तरगों सा बना उत्ताल
रा रही थी दूर जाना था नवीन प्रदेश
परिजनों की भावना में संस्मरण थे शेष

एक बार ग्रहण हुआ था मातृकुल, परिवार
दूसरे थ जो वहन की जे छुके पतवार
खींचता पीछे निरंतर जन्म भू का स्नेह
धम आवश्यक पहुँचना किन्तु पति के गेह।

मातृ हीना थी न मा का पा सकी थी प्यार
था विदा का विरह फिर मा-संस्मरण का भार
द रह दादस स्वजन, पर वर रहा था टूट
प्रियजनों के बच से बिछुड़ा रहा कब छूट ?

रुच न पाया मधुर भोजन घर गया पथ भाल
कह रहा थी बात अयमल से लिए उच्छ्वास
दस में दो चार दिन में हो तुम्हारे पास !
किन्तु लघु भ्राता रहा या रो, न था उल्लास

कह रहा मैं भी चलूँगा ही तुम्हारे साथ
स्नेह से अविराम सिर पर फेरती थी हाथ
वह नहीं कुछ जानता था उस गमन की बात
इसलिये आक्लान्त सा था खिन्न ज्यों जलजात

गूँजता करुणा प्रपूरित था विदा का गीत
परिजनों की कल्पना में भावना में प्रीत
जा रही दुहिता हमारी आज अपने धाम
पवन ! तुम रहना सुशीतल शुचि रहो उद्दाम

धूल से भरना न रहना पथ में अनुकूल
पंथ दिखलाना सतत यदि कहीं जाएँ भूल
अरुण ! धीरे से उगो कुम्हला न जाय फूल
मधुओं पर तान लेना आज जलद-दुकूल

पथ का तम दूर करना नभ ! सुनो तुम आज
अभद्रों का दूर करना है तुम्हारा काज
रात पथ में हो कहीं तो शुभ्र हो उडुराज !
शान्ति देना वर-वधू को और रखना लाज !

चल पड़े रथ-अश्व चपल वर वधू थे मौन
एक उलझन प्रणय की थी न जाने कौन !
नारियाँ दो चार करती थी खड़ी था बात
है रुदन दुलहिन दिखाया यह प्रणय का घात

कर रहीं सखियाँ वधू को व्यंग्यमय उपदेश
देश जैसा वश रहता है पराया देश
तुम इन्हें आराम देना एक सेवा-कार्य
मात्र इनकी चिन्ता हो, और कुछ न विचार्य

यह न मा का घर, अधिप का देश मधु का धाम
धाम भी प्यारी सखी री ! और प्यारा काम
और 'जीजाजी' हमारी बहिन है अनजान
भूल हो तो क्षम्य, रखिये प्रेम पूरित ध्यान

व्यग्य भाता था न उसको हर्ष भी था खेद
प्राण–धन सहवास का कब जानती थी भेद ?
साधनी थी जगत् की कैसी निराली रीत ?
आज उसको लग रहे थे भाव सब विपरीत

कौन पाले कौन पावे, भावना में भ्रान्त ?
अपरिचित, अनजान होता प्राणधन प्रिय कान्त
चढ़ रहे थे ऊँट गज हय रथ पदाति अबाध
सम्मिलित स्वर बना कोलाहल सुमुख था नाद

यह रहा उद्यान था परिचित पुराना मीत
झूमते झूले निरंतर और गाते गीत
उड़ रहे थे भ्रमर कलियाँ सुध रहा थीं भूल
तितलियों से कर रहे क्रीड़ा निरंतर फूल

वल्लरी भुज-पाश में था बद्ध विटपी गात
विहग हँस हँस कर परस्पर कर रहे थे बात
चपल शाखा-मृग सतत अठखेलियों में लीन
तैरती थीं नीर कुञ्जों में सुचपल मीन

पवन के संकेत पर थे नाचते मृदु पात
अंशुओं के साथ मुस्काते नवल जलजात
हरे भरे प्रसन्न तरु की छाँह का सुख और
कुरमुनों में कर रहे विश्राम सुन्दर मोर

सजल दूर्वादल सघन विश्रान्ति का आगार
दिव्य सौरभ हर रही थी वाटिका का भार
फुनगियों पर पत्र जाले से झाँकते थे दूर
रश्मि निर्झर शुभ्र जीवन बाँटता भरपूर

घोंसलों में गुनगुनाते विहग शिशु सुकुमार
कुंज विस्तृत श्याम, सुरभित मंद मंद बयार
दूर कुछ ही सोहना पल्लव अकृत्रिम शान्त
थी घनी छाया वटों की दूर दूर सुकान्त

छाँह शीतल हर रही थी चतुष्पद-कुल घाम
हो रहा नर्तन तरंगों का सुखद अभिराम
कूल पर आ भूल जाता नीर हृदय-प्रवाह
भूलता मझधार मिलती अब न कोई राह
दूर आगे थे क्षितिज के पास टीले मौन
स्वर्ण धूल ललाम उपमा इस जगत् में कौन ?
झाँक कर दिनकर किरण जब फेंकती मुस्कान
दीखता प्रत्यक्ष भू-स्वर्गीय स्वर्ण विहान

व्योम में छायें जलद जब छिप चला उडुराज
दृश्य प्रिय था नीरसा सारे नयन-तम-भाग
आया घन-संदेश सा नूतन मधुर घन-गीत
हुए विभ्रम नवकम्प सी हो चल भू प्रीत
व्यथित सारस से निरंतर नवजलतम घनश्याम
श्रान्त होकर भी गगन में लें न कुछ विश्राम
निकट आ चुपके स्थिरा के स्पर्श करते गात
दौड़ती विद्युत् हँसे कुच-तुंग-हीरा रात

हस्त-कुच मदन-सुसज्जित, मृदु सी गतयाम
भू लगे ज्यों स्मर प्रपीड़ित-चपल प्रियतम वाम
दृश्य प्रिय के पास भू का बोलता हँस मोर
व्यंग्य में अविरल दिखाने प्रखर करते शोर
व्यग्य विहग बर्हियों की केकियों का हास
केकियाँ सुनतीं पिहाती विकसता उल्लास
बालियाँ मदभावना अब भूल जायें झूम
पुष्ट विटपी से लिपट लतीं अधर रस चूम
चलित-भ्रमर जब जलधरों में सार दृता याम
मुग्ध अलौकिक प्राप्त कर सहीर होते प्राण
माधवी नव भागिनी सी स्निग्ध भू की रेणु
शिव स्वरों में घन-संपदा प्रिय बजाता वेणु

ताप-तप्ता नीरसा को दिव्य आशा-धूस
पवन झोंकों में मचलती प्रिय भुजा में मृस
घन-रसा का चेतना प्रद जब मिलन अभिराम
तब यहाँ के दृश्य कितने भव्य और ललाम ?
चाँदनी रातें यहाँ की और शीतल प्रात
धूम धूल भरी विमल सन्ध्या सभी कुछ भात
चल रहा था रथ हृदय के अश्व भी बलवान्
सोचता अनजान मीराँ घूमता था ध्यान

हरित वसना भूमि, अंचल में रसों का राग
क्षितिज तक फैला रसा का हरा भरा सुहाग
सस्य कुसुमों में कहीं थे कृषक गाते गीत
भावना के कल्पना के नये स्वर संगीत

बाँस के उस पोर से निःसृत अनाहत नाद
कौन वह, जिसको श्रवण कर कुछ न आई याद ?
थे मधुर वे गान जिनमें स्वयं पूर्ण विभोर
क्षितिज पर रवि झाँकते थे भव्य कैसा भोर !

कृषक बालाएँ निरंतर थीं परिश्रम लीन
पूर्ण गोलाकार तन सुन्दर चरण करपीन
बैल गायें ले रहे संतोष की सी साँस
वत्स भरते चौकड़ी, सब चर रहे थे घास

कृषक-कल्पना शस्य धान्य पर
मृदु घन माला सी लहराती
विस्फारित दृग मौन एकटक
शाद्वलता में ही विभोर बस

ग्राम-काव्य के पृष्ठ पृष्ठ में
नव जीवन का भरा मधुर रस
मानस के शतदल पत्रों पर
कनक किरण करती अठखेला

मद मरंद सौरभ विभोर प्रिय
नाच रही अलिनी अलबेली
शृंग शर्फों से रेणु उछाले
अनवधान् शस्यादन तन्मय

भीम गरजते भर कुलांग चल
शान्त, खेत्र के स्तम जयाजय
शिव निहार भर प्यार विहँसता
होता सुख से मानस शीतल

होगा घर घर मंगल गायन
शान्त, सुखा अभिराम मही-तल
सोच साथ होता अनुपम सुख
अन्तराल में स्तय प्रभाती

गुनगुनाने में लगी थी गान, वह अनजान
प्राकृतिक प्रिय दृश्य बरबस खींचते थे ध्यान
किसी कुरमुट से निकल कर शशक आते भाग
दूर सूगक कूचक करते थे जुगाली आग

नवल अपने शावकों की उछल कूद अकाम
देखते थे मौन मृग कुल दूप से उद्दाम
वनचरों का किटकिटाना भी लिए आह्लाद
प्रतिध्वनित बन दूर तक ही गूँजता था नाद

हँस रहा था समय अवर में लिए अनुराग
मय का सुकुमार यौवन खेलता था फाग
शुष्क पर्णों पर तुहिन क कण रहे थे खेल
बाल-रवि की अरुणों का था अलौकिक मेल

कलियाँ फरकी, मतोरों को रही थीं भाव
पीत फूलों की मधुरता से रही थीं राच
कृपक-बाल उड़ा रहे थे पक्षियों को घूम
स्वर निराला गूँजता था व्योम का उर चूम

पक्षियों के रव अमर-पुर की सुखद झंकार
शुभ्र-पावस-सरित् की सी कलित, गुंजित धार
गूँजता था किसी विरही के हृदय का प्रान्त
शान्त जिसकी रागिनी पर झूम आता स्वान्त

जग कहता घन पर हित-दानी
पर घन अपने लिए बरसते
विरह-व्यथा से ताप दग्ध ये
जीवन में एकाकी नीरव
नीरस, उन्मन और तृषाकुल
हो जाते सूना लगता सब
अंतराल में तिमिर-रश्मियाँ
आशा-नीलोत्पल मुद्रित कर
कृष्णाग्रस्त सी कण अणु अणु में
कनक-रश्मि को आच्छादित कर
अमर बेल बन सघन फैलती
और वियोगी ये हो जाते

करुणा पूरित विकल स्वरों में
शाप-युक्त विरही से गाते
हृदय पिघलता चीत्कार कर
घू घू पड़ते नयन बरसते
जग कहता, घन परहित दानी
पर घन अपने लिए बरसते
पर-पीड़ा से सुखी जगत् की
किन्तु निराली कैसी बातें ?
घन-दृग-सीकर को कह देता
राग रँगीली शिशु बरसातें
क्योंकि इसी से ही तो इसके
सारे सुख-साधन जुट पाते

जिनसे इसको रहे सुभीता
बस उनसे ही रखता नाते
घन की गहरी विरह-व्यथा का
और संस्मरण यह क्यों जाने?
कभी चितवता विपथ बन क्यों
घन के ये संगीत के गाने!
घन तो अपने लिए तरसते
जन पर अपने लिए बरसते

साधना थी यह, हृदय गद्गद् बना भावाक्रान्त
हरित-तृण निर्मित कुटी हाथ यहाँ एकान्त
सो न जाऊँ मृदुल धरती पर व्यथा सब भूल
और आगे हो सरित्-संगम चिरंतन-कूल
निकट हों खग-कुल, हरे हों नाद मृदु, अम्लान
गूँजता हो विहग-रव से सुरभि मय उद्यान
और कोई भी न हो बाधा रहे अवदात
प्रिय सुनें कह दूँ हृदय का मैं मनोरम बात
दरसने लगती कभी नाहक कहीं विपरीत
इसी अंतर में रसिक की पूर्ण होती बात
हाथ चुपके से दबा दें वधू का मौन
इस अलौकिक स्पर्श का सुख कह सकेगा कौन!
उमड़ता था हृदय जिस में प्रणय का संसार
मौन-कंपन लहर से ज्यों क्षुब्ध पारावार
चाहते थे स्वप्न हृ हालें क्षितिज के साथ
श्याम के उडु-गण सुनें नंदन विपिन की गाथ
क्षुद्र कंदुक सी धरा भू का न था कुछ मोल
कर रही थी जलधरों पर कल्पना कल्लोल
चाहना थी एक मैं जाऊँ रसिक के तट
साधन प्रिय लूँ भुजाओं में शरीर समेट

दो मिलन-आतुर हृदय में प्रगति का उल्लास
कामना-सतरंगिणी में वासना का प्यास
सूत्रधार बना हुआ मन खींचता था तार
नाचती अभिराम पुतलियाँ सतत सम्भार

वे नयन नत लाज आती था रही अनजान
क्षुद्र गति विधि सी हृदय तक खींच लाते कान
स्वेद-कण संकेत कर दृग पिपासा भीम
प्रथम संगम की कहानी अकथनीय, असीम

प्रिय त्वरित आँखें बचाकर पूछते क्या प्यास ?
भूल तो दो प्राण ले लो फिर सरकते पास
डूब जाता लाज में वह और रहता मौन
गान तन्मय था बराती कौन जाने कौन ?

आज विश्व में शिव किसलय है
अनुपम सुख गायन मर्मर में
मादक लय नव नर्तन-स्वर में
पुलकित प्रतिपल नववय चंचल
शाखाएँ कल अभिनयमय हैं
आज विश्व में शिव किसलय है

सुरभित गद्गद् विमल पवन है
शाखा पर यह विहग-सदन है

दुस्तर पादपप्रद आतप से
जो पल पल प्रतिपत्र निर्भय है
आज विश्व में शिव किसलय है

छाया में अंकित मुस्कानें
खग-विहगों के ये मधु गाने
प्राण हृदय से दूर निराशा
जीवन को यह स्वर्णिम लय है
आज विश्व में शिव किसलय है

आ गई थी गाँव की सीमा रुके गज यान
ग्राम सीमा देव का करणीय था सम्मान
उतर कर श्रीफल निकाले, देवता की भेंट
हों प्रदर्शित वर वधू के साथ दें वे भेंट
दूध से कच्चे खुले श्रीफल मधुर था स्वाद
बाँट डाला गया झट सबको समान प्रसाद
बात अपनी कर रहे थे वृद्ध और अधेड़
मित्र गण घर के लगे करने सखा से छेड़
देव ने भी दे दिया आशीष अपना प्यार
अब तुम्हारी घी भरा पाँचों, तुम्हीं आधार
नमक खाया है तुम्हारा दिन कई भरपूर
अब मंगलमय दिवस हों घर न थे तब दूर
किन्तु भाभी मेड़ता की कम न यह भी आप
भक्त गिरधर की सुनी कुछ दे न डाले शाप
हम लगें देवर हमारा भी जरा अधिकार
सहें भाभी को हमारी ओर से भी प्यार

छोड़ते थे मित्र कितने ही अनोखे तीर
नव वधू मीराँ रही अनजान किन्तु अधीर
अधिक तीखे व्यंग्य में भी था भरा प्रिय प्यार
मौन थी लज्जा हुआ अज्ञात हर्ष अपार

द्वार गृहलक्ष्मी खड़ी थीं, आरती का साज
काष्ठ-पीठ ज्वलित सम्पति से रहा संभ्राज
मोतियों का चूर्ण, कुंकुम, भाल पर सुविशाल
स्वर्ण की कलशी बधाई के सुमंगल गान

पग न पड़ते थे धरा पर नाचते थे रोम
हर्ष गद् गद् था, हृदय था बह रहा बन मोम
लग रहे थे आज के दिन पूर्ण तीनों लोक
वधू चरणों में पड़ी थी, दे रही थी 'धोक

रमणियाँ आनन वधू का देखतीं उपहार
बार बार सराहना करतीं समूह अपार
कह रहीं सखियाँ परस्पर भाग्य की सब बात
चंद्रमा को चीर कर विधि ने बनाया गात

चाँद सी दुलहिन, चतुर, इतना अधिक उपहार
दासियाँ गज हय, रथों का क्या कहों कुछ पार ?
आ रही जी में कि बैठा लें वधू को पास
नासिका, भौंहें नयन, मस्तक अधर स्मितहास ?

नाम मीराँ नीरजा की मुकुल सा अभिराम
बाल-रवि की अरुणा के जाल सा छविधाम
फेन सा उज्वल मराल-कुमार-चंचु-समान
सुन्दर पावस जलधरों का सतरंगा गान

केश सावन और भादों की तमी का सार
कुन्तलों के भ्रमर ज्यों सर में तरंग-विहार
शीशफूल, विभावरी में तारकों का जाल
मणियाँ, ज्यों शेष की प्रिय मणियाँ विकराल

भाल की बिन्दी स्फटिक के भित्ति में ज्यों दीप
कर्ण-संपुट स्वाति में ज्यों तैयारी हों सीप
कर्ण की मणियाँ ग्रहों की झिलमिलाहट दूर
सतरंग ज्यों मीन का मझधार में भरपूर

मृदु भौंहों में पवन उनचास का उद्दाम
इन्द्र के नन्दन विपिन की सुरभियों का ग्राम
नयन की आभा गगन में चन्द्रिका का प्यार
नासिका में स्पष्ट अंकित शुक चंचु की हार

नयन-कोर हरिन-करों की दह ज्यों छुटे बाल
नाक-मुक्ता हंस ज्यों ले चंचु-बीच मृणाल
अधर जलद-पत्रों का अनगल उन्माद
दंत-अवली संगमरमर का मधुर आह्लाद

हास्य, सुरपुर अप्सराओं की अनत उद्दाम
मधुर वाणी में विपंची का अलौकिक भास
मुग्ध जिह्वा, अरुण उत्पल नख विहारी पाव
चिबुक, श्री-फल के हृदय सी सबल मृदु अवदात

गोल-गोल कपोल ऊषा लालिमा ज्यों सोम
सुघड़ मुख मंडल उदय ज्यों पूर्णिमा का सोम
चारु अवगुंठन, गगन में जलद खंड वितान
कम्बु-सी ग्रीवा, चपल लावण्य का अभिमान

बाहु मंजुल कल्प तरु-शाखा-समान सुडौल
कान्त जिसके पाश में भू-स्वर्ग जाये डोल
गौर किंचित् स्पर्श भी हिम-खंड जैसा वास
बार-बार लपटने पर भी न जाती प्यास

वलय में गन्धर्व-कुल के नर्तनों का नाद
स्वर्णमय भुजबंध यौवन के तृषित उन्माद
मृदुल अंगुलियाँ कलाधर-तूलिका-समुदाय
अंगुलीय प्रभा-प्रकाश दिव्य-ज्योति निकाय

हस्त की अन्तस्थली कौशेय के स्तर पीन
चारु रेखाएँ लता के तन्तु-जाल नवीन
मेंहदी नख-लालिमा में प्रणय का अनुराग
कर भुजाओं का मनोरम कला पूर्ण विभाग

स्कन्ध युगल मरालिनी की पाँख से चितचोर
कण्ठमाला कौमुदी की आत्मा का भोर
मौक्तिकों का गुच्छ मानस के हृदय का नीर
तार और पहुँचिया का श्रम लिया हो चीर

स्तन युगल से सुधा के कुंभ की मनुहार
विश्वभर के कामनों के सुमन रस आधार
जलधरों के प्राण, यौवन-पुण्य के संकेत
सूम-कुल काठिन्य सजीवन-जड़ों के खेत

रक्त हीरक से भरे हों कलश ज्यों कलधौत
श्याम कोर उतारकर उड़न यथा शुकपोत
बिल्व टिपी पर लगें ज्यों नव्य फल विस्तीर्ण
पास पास विभक्त ज्यों श्रीफल मधुर उत्तीर्ण

अग्रभाग रसाल-दल पर हो मधुर गजार
तुंग टीलों पर करें ज्यों कृष्ण हरिण विहार
बीच अन्तर-प्रान्त में प्रिय सरित् सा भूभाग
गूँजता पाने जिसे प्रय-चाक का अनुराग

एक सुप्त कंपन हृदय का भूमि का भू-चाल
स्वप्न-क्रीड़ा माधवों के हर्ष का उजाल
कल्पना अमरावती की कोकिला के गीत
हर्ष क्षुब्ध-समुद्र मथन में सुरों का जीत

कामना अमराइयों में श्याम श्री का रास
मात्र नीरज मुकुल में शत मधुकरों का वास
राग मरकत-नाल में नव नाभिजों का स्वान्त
बुद्धि, अगणित निर्झरों की अश्रु का मध्यान्त

भावना-अभिव्यक्ति मन्वन्तर-अयुत-संसार
सत्य अनुभव कथनों का अमिमय आकार
और श्रद्धा क्षीर-सागर के हृदय की थाह
काम स्मर के पुष्प-बाणों की सहस्रों दाह

एक उत्कट अगस्त्यों का पिपासा-चाप
ताप रिमझिम बिन्दुओं का मधुरतम आलाप
प्रेम-जनित विरहा के निर्झरों की धार
शान्ति सुरधनु के हृदय के परिष्कृत उद्गार

चालिका शृंगार-रस के रंग का विस्तार
दामनें कादम्बिना की छाँह का संचार
चाप कटि की प्रिय ढुँढाइ में कला का हाथ
पृथुल यशस्तम नितम्बों पर सभी नतमाथ

करधनी, ज्यों गह्वरा मे गोमती निष्क्रान्त
दिव्य अतर्-पट नवल कवि का मधुर एकान्त
आँख में ज्वालामुखी के स्पन्दनों का भास
मृदु सुनाई स्नेह का ज्यों कपलियों से व्यास

गोल पिंडलियाँ शची के हर्म्य की सोपान
नूपुरों में, पायलों में विश्व का यशमान
नाग सी गति चमक में पवमान का मृदु मार
पूर्ण नख शिख, रुक चला सब विश्व का व्यापार

भाल गर्वोन्नत, यथा आकाश में हिमवान्
कुच-कलश से कटि-तटों तक शिव त्रिवेणी-स्नान
कर युगल प्राची प्रतीची के सुरम्य विभाग
हास के पश्चात् सागर की सुधा का राग

कर रही थीं समवयस्का नारियाँ उपहास
साल से जिसका हृदय था छू रहा आकाश
सालियाँ अब नव वधू को सौंप के सब दाम
तुम करो अब राम राम विलम्ब का क्या काम ?

यह न जायगा भई यह यही चिपू थाम
आज भी इसका हृदय कब चाहता विश्राम ?
वृद्ध होने आ रही पर मन न मुड़ा जीर्ण
कामना पर् शास्त्र में यह सर्वश्रेष्ठ प्रवाण

बाँधना अच्छा किसी का घर रहो तुम तोड़
ना बहिन ! तुम तो कदापि न कार्य ऐसा छोड़
यह नहीं आचार्य ईश्वर का सभी कुछ दोष
मन नहीं उनका रिझाने लूट लेते कोश

आपको कैसे पता जी ! मनचले ये यार ?
इस घरेलू बात में पञ्चम्य काह घोर
ये रहे ज्यार इधर भाभी चटोला नार
प्रात होना सारिका शुक के हुए इस पार

भाभियाँ थर की उधर यों कह रही थीं बात
चाहतीं मिष्टान्न कर देंगी नहीं उत्पात
यह हमारे बात बस की हैं हमारे दाँव
आज देवर जी! हमारे पूज्य होंगे पाँव

एक भाभी ने कहा यों बात यह निस्सार
पूजकों को कौन देता है यहाँ उपहार?
भक्त जब पहुँचे हुए भगवान आगे व्याप्त
बीच में पड़े कभी क्या कर सकें कुछ प्राप्त?

एक भाभी ने कहा तुम मिल गई क्या आज?
सार में मूसल चलेगा है हमारा राज
कुछ न पल्ले पड़ सका तो ये करेंगे याद
वह हमारा बन्दिनी हम तो करें आज़ाद

कोकिला स्वर छोड़ ऊपर सुन रहे हैं काँव
गुरु खड़े, गोविन्द भी किसके पड़ूँ मैं पाँव?
सोचते हैं एक भाभी ने चलाया तीर
हँस रही यों भाभियाँ स्वर अमद अधार

सोचती थी यह सी मीराँ वधू अनजान
आज कैसे कर सकूँगी ध्यान गिरधर-ध्यान?
प्यार जपमन्त्र कौन जान रो रहा था शान्त?
कुछ यहाँ न अनिष्ट होवे हे प्रभो! मन भ्रान्त



षष्ठ सर्ग

★

श्याम-सलोने तन पर शोभित
अरुण शाटिका अभिनव
रक्त नयन इंगित करते पी
रक्खा यौवन – आसव

झनझन – छम्मम – पायल
से झिमका पुलकित तन
मस्त मतंगज सा मदमाती
आती रमणी नूतन

अपने विस्फारित नयनों से
ओर दलते चिन्तित
गमनशील अपने आवासों
के उन्मुख ही सीमित

अपने अपने नीड़-पुट में
बैठ नीरव नभचर
बतलाओ तो कौन कौन यह?
पूछें प्रश्न परस्पर

उड़ी शफों से नभ मडल में
छाई मिट्टी मैली
कौन आ रही पूछ रही है
निभ निज धेनु-सहेली



श्यामल-रमणी की प्रिय छवि पर
मोहित तरु अनजाने
विहग-कुलों के प्रश्नोत्तर पर
ध्यान – मग्न मनमाने

हुए उरोजों के दर्शन से
जिसके रोम प्रहर्षित
धूम्र पान कर नभ-रमणी को
घूर रहा आकर्षित

नव सध्या माता की ध्वनि के
साथ जल उठ दीपक
घटा – नाद समाप्त हुआ तो
भक्त – जनों की धकधक

सध्या को पहिचान विहगों
ने की पखें निश्चल
ईश्वर चिन्तन में अति तन्मय
हुए मूँद कर दृग चल

मौन दृग्न निज आश्रित जन को
तरुव्य प्राड़, सब नूतन
ध्यान-लीन योगी से नीरव
हुए क्षिप्र चिन्तन मन

दग्र सजनी मान रजना
विधु विरह से हो रही क्यों ?
मा हटा श्रृगार स रे !
दग्ना स व्यथित चिन्तित

मीराँ

कृष्ण सघन में छिपा मुख
उन्मनी हो सो रही क्यों ?
देख सजनी मौन रजनी
विधु विरह से हो रही क्यों ?

मिलन – हृय – प्रमाद – निद्रा–
स्वप्न में छाया अँधेरा
फिर निराशा से प्रबल–
उल्लास उर का धो रही क्यों ?

देख सजनी मौन रजनी
विधु विरह से हो रही क्यों ?

भावना के स्रोत से र ?
सुमन सरस्तियाँ प्रणय की
चपलता उन्माद पावन
क्षणिक यों ही खा रहा क्यों ?
देख सजनी मौन रजनी
विधु विरह से हो रहा क्यों ?

अल्हड़ चंचल दुलहिन मीराँ
ज्यों प्रकाश की छाया
शिशिर-समीरण-दोलित लतिका
सा शांति-स्नेहमय काया
प्रियतम-मोहक-पीन-वक्ष की
भावमयी अँगड़ाई
छुईमुई की कोमल शाखा
सी पलकें सकुचाई

शून्य-विभाग शिखा से मन की
स्वर मानो अभिलाषा
मानस-तट के सब ओर सी

महा अब्धि की क्षुब्ध हिलोरा
सी लिप्साएँ आतीं
धूप – वर्तिका धूम शिखा सा
उर सुरभित कर जाती

मरीचिका में मृग शावक ज्यों
चिन्तन अति भरमाया
दूर-दूर के दो हृदयों में
एक गान लहराया

प्रणय-कथा में भूल रहे थे
नूतन साजन – सजनी
महा निराशा आनन था नत
बैठी थी चुप रजनी

मन-अम्बर में आशा – पक्षी
कभी-कभी उड़ जाता
निरख निराशा तिमिर घटाएँ
पीछे ही मुड़ आता

दीर्घ साँस ले नभ शय्या पर
शिथिल हुई पछताई
मुरझाया था दिव्य मनोहर
आनन ज्योति न छाई

चाव-चन्द्रिका से हर्षित मुख
नव रजनी-पति आये
प्राण-वल्लभा को पाया
पर निद्रा में भरमाये

मान प्रेरणा से निशिपति ने
अम्बर चरण बढ़ाये
रजनी-पति को मुग्ध जान कर
तारे मौन सजाये

तुहिन दिव्य कण मुक्ता-ग्रथित
हरी दूब का आंगन
बिखर रही थी मुक्त वल्लरी
जिसमें प्रिय आकर्षण

सरल, नवल मञ्जुल हरीतिमा
पीवर तन में भासित
सौरभ चारों ओर व्याप्त थी
घूम रही निष्कासित

सुन्दर थी वह छटा नभ में
छिटक गई थी चन्द्रा
हँसती थी रजनी, कलिका की
दूर हो गई तन्द्रा

स्मित-भामना चपल शैवलिनी
रह रह मुस्काती थी
बिखर रहा उल्लास चिरंतन
नव लहरें गाती थी

निशीथिनी के मधुर हास्य से
सब निःशब्द विहग थे
शैवलिनी की मधुर तान से
नीरव स्तब्ध विटप थे

सजनी हर्षित क्यों अलसत्व ?

यौवन का मदिर मधुर स्पन्दन
अधर से अधर का बंधन
बाहों में बाँहें तन में तन
स्वर्णिम मधु सपनों में कलरव
मन थिरक रहा है क्यों पल पल ?

सफुल्ल वाटिका तुल्य हृदय
जिसमें मृदु किसलय हो किसलय
मंजरियों का मादक अभिनय
जलधर मराल-दल पर चढ़कर
गद्‌गद् हो जाता क्यों चंचल ?

रजनी के सुन्दर तारों में
विधु के कमनीय विहारों में
शैवलिनी की झंकारों में
आकर्षण नया नया मधुमय
प्रिय क्यों आमन्त्रण का अचल ?

मैं गाऊँ तुम सुनती जाओ !
उद्यान विमल, नभ प्रांगण में
उड़ इधर कभी, उड़ उधर कभी
तिनके मृदु नीड़ बनाने को
मैं लाऊँ तुम चुनती जाओ !

यों उसे रिझाते थे प्रियतम
मुस्काते थे वे पुन पुनः
मैं अपने मन की कहूँ सभी
तुम सुन सुन कर गुनती जाओ !

हम जीवन को कृतकृत्य करें
हम नृत्य करें रुमझुम रुमझुम
तुम चपला नर्तित संग संग
मैं वर्षा-मुग्ध घन संग संग
तुम निझरिणी मैं शैल शृंग
मैं इन्द्र-धनुष तुम त्रिविध रंग
तुम स्वर्ण उषा मैं वन विहंग
तुम जलज मुकुल मैं विकल भृंग
मैं व्यथित हृदय तुम नव उमंग
तुम मधुर विपंची मैं मृदंग

मीरा

तुम दीपित मणि मैं विष भुजग
मैं सागर तुम फेनिल तरंग
तुम ज्वाला मैं निर्मल स्फुलिंग
तुम मृग-तृष्णा मैं चपल कुरंग
तुम मैं मैं तुम तुम मैं मैं तुम
हम नृत्य करें रुमझुम रुमझुम

सुधबुध भूल बहते ये प्रिय
जैसे भावाकुल घन
नये अपूर्व अलौकिक सुख में
तन्मय मीराँ का मन

कितना मादक कितना सुन्दर
कितना मधुमय जीवन !
मन की इच्छा यही सदा हो
तुम मैं चिर मधु यौवन

जीवन में मधु भरा न हो तो
पात्र रहेगा खाली
अधर का जीवन नीरस यदि
हो न स्वर्गों की लाली

अखिल चराचर ही मधुमय है
मधुमय जग का कण कण
पान वाले [illegible] पाते है
सुधा बरसती क्षण क्षण

यह उद्यान नहीं है जिसमें
सुमनों के घाट हों
पत्ते सूखे बिखर रहे हों
कटक हों काट हों

कोटर में मकरन्द न रहे तो
नीरसता छायेगी
सुन्दरता, मृदुता हरियाली
कैसे रह पायेगी ?

नव रसाल का मजरियों पर
कोकिल का मधु कूजन
मधुमय अभिनव जीवन का ही
होता है नित पूजन

अलियों की गुंजार वहीं है
कलियाँ जहाँ विकसतीं
मधु दे दर्तीं मधु ले लेतीं
सतत हँसातीं, हँसतीं

मधु का क्रय विक्रय हो जीवन
पर हावे तन्मयता
बन्धन क्रन्दन व्यथा न होवे
पाने की निर्भयता

यौवन के सुन्दर प्याले में
मादकता का नर्तन
अखिल चराचर की आकुलता
क्रमा का परिवर्तन

रीति निराली है यौवन की
यौवन स्वयं निराला
यौवन के प्रत्येक श्वास में
भरी हुई है हाला

उस हाला का मधुशाला को
जो नर पा जाते हैं
उनका जीवन तृप्त जगत् में
चोट नहीं खाते हैं

नव यौवन की गलबाँहों का
जिनको स्वाद नहीं है
उनका जीवन ही निष्फल है
कुछ आह्लाद नहीं है

यौवन जिसमें कालकूट भी
अमृत बन जाता है
हत, हत पर यौवन थोड़े
दिन ही रह पाता है

यौवन चंचल क्षणभंगुर है
स्वप्न सा आता है
जिसमें झूम झूम कर मानव
अन्धा हो जाता है

उषा की लाली सा जीवन
चुम्बन सा यौवन है
अलि के गुंजन सी तन्मयता
मृग – तृष्णा सा मन है

आओ आओ यों न गँवाओ
थोड़े से यौवन को
छोड़ चला आयेगा यों ही
एक दिवस इस तन को

अभिलाषाएँ तृप्त रहें तो
जीवन सुख पाता है
नहीं चिन्तना थम जाती है
भूखा रह जाता है

भूखे जीवन की अभिलाषा
भूख – भूख चिल्लाती
एक बार की भूख निरंतर
सौ सौ भूख जगाती

तृप्ति नहीं तो जीवन कैसा?
यौवन भी जीवन का?
प्राणवल्लभे, चलो बसायें
नया जगत् हम मन का

इस तृष्णा ज्वाला से जीवन में
क्यों अवसाद बसायें?
मधु है प्याला है पानक भी
क्यों न इसे पी जायें?

जग भौतिक है नाशवान् है
सत्य दूसरा जग है
जो यह कहते भ्रम में हैं वे
निराधार नभ-जग है

मिथ्या पर सोने की कलई
वे झूठी करते हैं
यौवन काल उनके पीछे
पीछे कब मरते हैं?

जो मधुवाले मानव उनके
पीछे हो जाते हैं
जीवन भर पछताते रहते
भ्रम में खो जाते हैं

जिनकी भौतिक अभिलाषाएँ
होती तृप्त नहीं हैं
मिथ्या कल्पित अन्य जगत् में
होते लिप्त वही हैं

कैसा विस्तृत मधुमय जग है?
इससे परे न कोई
इस जीवन की अभिलाषाएँ
यहाँ न जाएँ खोई

तृप्त मनुज हो अन्य लोक की
चिन्ताएँ करता है
इस भौतिक जग से जब उसका
हृदय नहीं भरता है

जब बुद्बुद सा ही जीवन तो
यों क्यों इसे गँवायें ?
क्यों न लीन होवें असीम में ?
जीवन सफल बनायें

बचपन में कुछ ज्ञान न होता
व्यथा अवस्था ढलती
यौवन में कुछ करें नहीं तो
इच्छाएँ कर मलतीं

एक मनुज ही सत्य सभी पर
यह विचार सुन्दर है
पर यह नभ भू चन्द्र सूर्य क्या
रच सकता जो नर है ?

उस असीम की सुन्दर रचना
नर क्या कह सकते हैं ?
स्मरण रहे विमुख भक्ति पर
हम सब मर सकते हैं
जिस दिन मानव तुच्छ बनेगा
जग यह अब आयेगा
उसके अहंकार का झोंका
सब का मन भायेगा

ऐसी तन्मयता, अनन्यता
मीरा झाँका करती
मोह-पटिका से विरक्त को
तन में हाँका करती

भौतिकता से विमुख नहीं मैं
पर वह नहीं सहारा
यह तो साधन साध्य नहीं यह
यह क्य लक्ष्य हमारा ?
नश्वर तन की चल इच्छाएँ
मन को खोया करती
काम मोह मद लोभ क्रोध से
जीवन खोया करती

जो विवेक की तन्मयता में
डूब नहीं सकते है
वे इस भौतिक नश्वर जग से
ऊब नहीं सकते है

जल-कुम्भों के प्रतिबिम्बों का
हम अस्तित्व मानते
जिसके ये प्रतिबिम्ब न उसको
मूलाधार जानते

जिस स्वचा में स्वाद मिला वह
ऊपर नहीं चढ़ेगा
फल फूलों के लिए विटप पर
ऊँचा नहीं चढ़ेगा

यह कह देता दुनियाँ भर का
सब आनन्द यहाँ है
और स्वाद्य जग में ऐसा
मधु मकरन्द कहाँ है ?
पर प्राणी ऊपर चढ़ जाते
पन्न मात्र न्यारा है
पता डालियाँ रखता जरा भी
नहीं सुमन पास है

म गिरधर को इस दुनियाँ स
ऊँचा माना करता
उनसे ऊँचा नहीं किसी को
भी मैं जाना करती

मीराँ सोम निहार रहा थी
प्रिय मीरॉ क मुख को
वे विधक से आकर्षित थ
मान गये थे रख का

बोले व गदगद् मुस्का कर
आओ हम खिल जायें
तुम विरक्ति हो और भोग म
एक साथ मिल जायें

मीरा पति के प्रति गद्गद् थी
व मीराँ स हर्षित
एक दूसरे का तन प्रतिमा
करते थे आकर्षित

चाँद गगन में चढ आया था
सुन्दर था भाता था
सौम्य दृश्य था दोनों का ही
हृदय पिघल जाता था



सप्तम सर्ग

*

निज रंग-महल की छत ऊपर
सब कुछ निहार मारों चंचल
जब बैठ गई रुक कर थक कर
कुछ सोच रहा था अंतस्तल

वह स्थल था सुन्दर जिस पर से
सब ही दिखलाई पड़ता था
चारों कालों का दृश्य सुलभ
नयनों में स्पष्ट उमड़ता था

प्रिय भी समीप आसीन हुए
बोले यह स्थान मनोहर है
यह दृश्य रहा था यत्र तत्र
बाला हाँ सचमुच सुन्दर है

ऐसा होता है ज्ञात मुझे
आंचल में पलना पड़ता है
या चलना-चलना ही जीवन
थक थक कर आगे चलना है

मीराँ

बोल प्रिय ऐसी बात नहीं
जीवन चढ़ना ही चढ़ना है
चढ़ना जीवन का ध्येय नहीं
आगे आगे ही बढ़ना है

जो नीचा होगा नहीं कहो
कैसे ऊपर चढ़ सकता है ?
जो पीछे होगा वह ही तो
आगे आगे बढ़ सकता है

छोड़ो भी ऐसे झगड़े को
है व्यर्थ उलझना बातों में
देखो तो दूर छटा कैसी
पर्वत के महा प्रपातों में ?

कल वहाँ चल जायेंगे हम
आखेट करेंगे जी भर कर
हाला के प्याले ढालेंगे
रस में भीगा गूँजेगा स्वर

शाखाओं हरियों का मास मधुर
छाया में बैठ सेंकेंगे
झरनों का पीयेंगे पानी
फिर दृश्य अनोखे देखेंगे

चलने को मन हो तो बाला
तुम साथ-साथ चल सकती हो
अन्यथा यहाँ घड़ी-घड़ी
एकाकी कर मल सकती हो

मैं नहीं समझ पाई क्या यों
जीवों का हत्या करते हो !
क्यों अत्याचारों पापों से
जीवन की झोली भरते हो !

जीवों को सता मार कर क्या
कोई कुछ सुख पा सकता है ?
हड्डियों मांस, शोणित में क्या
कुछ स्वाद कभी आ सकता है ?

जैसे हम वैसे ये भी हैं
अभिलाषा आशा रखते हैं
सुख-दुख आह्लाद-हर्ष सब ही
का स्वाद निरंतर चखते हैं

सब उस असीम की रचना हैं
सब उसके ही हैं अतः मित्र
उनकी हत्या, अपनी हत्या
इसमें होते विभु सदा खिन्न

तुम लोग मनोरंजन करते
उन पर पीड़ा आ जाती है
कैसी दुनियाँ है जीवों की
जीवन हर कर मुस्काती है ?

कोई तुम लोगों को मारे
तो कितना जी दुख पाता है ?
छोटी से लेकर हाथी तक
ऐसा ही सब का नाता है

ये जीव कहाँ रहते होंगे
जिनके मुखिया मारे जाते ?
ये कहाँ बिताते होंगे दिन ?
किससे कहते दुख की बातें ?

जीवन की सुन्दर बेला में
क्या यह ही करने आये हैं ?
भौतिकता के चक्कर में पड़
क्यों पता नहीं भरमाये हैं ?

क्या यह ही आगे बढ़ना है?
क्या ऐसा ही होता जीवन?
क्या यह ही ध्येय रहा करना
शोणित-मदिरा से पीकर तन?

ऐसे तन की ऐसे मन की
कितनी कुत्सित अभिलाषाएँ!
ऐसे नर की होती होंगी
कैसी गर्हिततम आशाएँ?

यह दुनियाँ है इसमें कोई
कुछ बोल नहीं जो सकते हैं
मारे जाते वे स्वतन्त्रता
का नाम नहीं चख सकते हैं

दूसरे जनों की आशाएँ
कर नष्ट रक्त जो पीते हैं
वे ही जगती के अधिकारी
सुखपूर्वक वे ही जीते हैं!

यह सुरा-पान जो कालकूट
जीवन का रस हर लेता है
निर्मल विवेक को श्रद्धा को
तममय कुरूप कर देता है

मदिरा के मादक प्याले में
दानवता नर्तन करती है
जीवन के सत्शिव सुन्दर में
नंगा परिवर्तन भरता है

पर रौद्र रूप मानव उसको
मृदु मधु कह कर पिलाता है
तम के अंतर् में धँस कर भी
वह उसके ही गुण गाता है

तुम भोली हो घर में रहती
इन बातों को क्या जान सको ?
मृगया के सुख चषकों के रस
चखे क्यों, क्या पहिचान सको ?

हम तो क्या हत्या करते हैं ?
जग ही सारा तल्लीन शुभे !
अपना तड़ाग उसमें देखो
क्या करती रहती मीन शुभे ?

घर की बिल्ली को ही देखो
चूहों पर आक्रमण करती है
पेड़ों पर छुप छिपकर, चढ़ कर
विहगों का जीवन हरती है

उस बिल्ली पर भी तो निशिदिन
कुत्ते ये ताक लगाते हैं
प्राणों के कितने ही घातक
घातक भी प्राण गँवाते हैं

तुम आँख खोल कर देखो तो
यह स्पष्ट दिखाई पड़ता है
चुपचाप तटस्थ बने रहना
जीवन की दुर्बल जड़ता है

जगती में यदि जीना है तो
यों रहो नहीं संघर्ष करो !
तट पर न रुको बन सरित उठो !
चंचल लहरों का स्पर्श करो !

यह जीवन है संघर्ष भरा
जो जितना घर्षण करते हैं
जीवन उपवन में प्रसून का
उतना ही वर्धन करते हैं

'प्राणी-हत्या' बोली मीराँ
सघर्षों की परिभाषा है !
स्वार्थान्ध जगत् के अन्तर् की
यह कैसी कुत्सित भाषा है ?

कह तो देते अभिमान लिये
हम मानव हैं सबसे ऊँचे
कैसा ईश्वर क्या पाप पुण्य ?
हम ही सब बातों में पहुँचे

पर, अपने पाप छिपाने को
कुत्तों की उपमा देते हैं
ऊपर विद्वत्ता की धारा
भीतर शोणित पी लेते हैं

यह सुरा मांस का सम्मिश्रण
व्यभिचार बढ़ाया करता है
स्त्री का सतीत्व कुछ टुकड़ों पर
जिससे लुट जाया करता है

ये दासी कुलटा वेश्याएँ
नग्न विकास व्यभिचारों का
ये सुरा-पान का दन गहन
कुत्सित फल पापाचारों का

व्यभिचार, गात्र विष-कन्या का
ऊपर से मन हर लेता है
मधुमय जीवन के कण-कण में
पर कालकूट भर देता है

पापों को प्रोत्साहित करना
आत्मा की हत्या करना है
आत्मा-विहीन पशु है दानव
जीवित रहते भी मरना है

यह पाप एक जिसको ढकने
सौ झूठ बोलनी पड़ता है
अक्षत घूल्हे पर काष्ठ उसा
पर एक बार ही चढ़ती है

सुनती हूँ, मानव यह जीवन
कठिनाइ से ही पाता है
चौरासी लाख योनियों में
वह घूम-घूम थक जाता है

पापों का, पुण्यों का निर्णय
भी स्वर्ग धाम में होता है
जो जगता वह कुछ करता है
जो सोता है वह रोता है

पति बोले, रहने दो प्रवचन!
तुम काम करो अपना, जाओ!
इन उपदेशों को रहने दो!
गृहिणी हो घर पर मँडराओ!

नारी तो नर की दासी है
नर के टुकड़ों पर पलती है
नर के इंगित पर जीवन भर
कठपुतली का ज्यों चलता है

चक्की चूल्हा चौका बर्तन
स्त्री के जीवन का मादा है
सन्तान जनन का यन्त्र पुरुष
की अनुगामी वह छाया है

मीरा नागिन सी झुँझलाई
नारी का जागा स्वाभिमान
ये मधन धरत्या सा गई उरा
हो गया स्वर्ग हो ज्यों विहान

पर अधःपतन उसका जिसका
उसको नर कामी कहते हैं!

बचपन की माता की बातें
मन युगपत् गूँजी कानों में
था सोच रही यह आत्म हनन
क्या छोड़ चलूँ सन्तानों में!

अन्तर् कहता था उठो उठो
तुम नारी हो जग-माता हो
जागो जागो चेतो चेतो,
तुम ही तो जग की त्राता हो!

तुम जिधर धरोगी चरण उधर
संसार घूम वह जायेगा
भ्रू भंगों का कम्पन् इंगित
भू-कम्प ढूँढ ले आयेगा

नारी अपने को पहिचानो
तुम ही तो भाग्य विधात्री हो!
तुम ही जीवन आधार मूल!
तुम ही तो जग-निर्मात्री हो!

जग नष्ट भ्रष्ट हो जाता तुम
होती न अगर तुम श्रद्धा हो!
विश्वास कल्पना भावुकता
तुम ही तो तुम क्या बड़ा हो!

यह उठी और चल पड़ी मौन
उर में विश्वास छलकता था
नारी का क्या सच्चा स्वरूप
आकृति से स्पष्ट झलकता था

प्रिय ने उसका कर पकड़ लिया
तुम कहाँ जा रही हो ठहरो
मैं नहीं ठहरती क्या मतलब ?
जो जी में आये वही करो !

मैं नारी, मेरा तिरस्कार
होता कट महा भयंकर है
मैं ऋद्धि सिद्धि भी, शान्ति क्षमा
मेरा स्वरूप प्रलयंकर है

मैं जागूँ तो जग जाग पड़े
मेरे सोने पर सोते हैं
मेरी मधु मुस्कानों से ही
ये लोक प्रफुल्लित होते हैं

यह कालकूट वाला शंकर
मेरे अभाव में रोता है
यह विष्णु स्वयं जगदीश सदा
मेरी गोदी में सोता है

मैं क्रोधित होकर नाचूँ तो
जगती में हाहाकार मचे
मैं अग्नि नाश की ज्वाला हूँ
जल उठने पर कुछ नहीं बचे

जगती के सारे रक्तपात
मेरे इंगित पर होते हैं
मेरी किंचित् नीरसता से
रावण दुर्योधन रोते हैं

मेरी आँखें खुल गई आज
निद्रा में बेसुध सोती थी
अपने [illegible] सुख-दुख हर्ष-कष्ट
से अविरल हँसती रोती थी

मेरे समान हा कोटि कोटि
जग-निर्मात्री पद धूल बनीं
उनके चिर बन्धन काटूँगा
इच्छाएँ होमूँगी अपना

मैं एक बनूँगा तो आगे
पीछे सब ही चल जायेंगी
संकीर्ण परिधियों से उठ कर
हिमाचल पर चढ़ जायेंगी

तब संसृति का यह नरक कुंड
मधु अमृत से भर जायेगा
कठपुतली दासी छाया का
कुत्सित सपना मर जायेगा

प्रिय बार बार यों कहते थे
छोड़ो सब सुन्दर बात करो!
पागल तो नहीं हुई भूलो!
मत यों तुम व्यथित गात करो!

देखा यह जगमगा शंकर
तेरे अभाव में रोता है
भाभी लक्ष्मी इन्दिरा हँसा!
यह विष्णु चक्र में सोता है

यह कह ज्यों प्रिय ने अपना तन
उसके चुम्बन पर डाल दिया
वह हँसा ज़रा, व्यथित सी थी
उनका तन त्वरित सँभाल लिया

प्रिय कहते थे अनुनय-स्वर में
तुम बातों में चिढ़ जाती हो
कुछ कहीं व्यंग्य में छेड़ दिया
तो गुस्से में बलखाती हो

साजन-सजनी की भी होती
क्या कोई कहो लड़ाई है?
भेदनी का सारांश मूर्ख
सचमुच काशिक की ताड़ है

पागल तो कितने ही देखे
पर तुम उन सबकी माता हो
तुम जग जननी हो ज्ञाता हो
तुम महा मूल निर्माता हो

देखो जी छेड़ रहे हो फिर
पहले तुम बात बनाते हो
फिर भांति भांति का विनय लिये
भीगी बिल्ली बन जाते हो

ऐसे दो-रंगे पुरुषों की
बातों पर कोई ध्यान धरे
वह पागल है, रार का ताऊ-
ऐसी गिरगिट-संतान', हरे?

जल-पान अभी मँगवाता हूँ
कुछ-कुछ तो भूख लगा होगा
इतना जब क्रोध किया है तो
ज्वाला अत्यन्त जगी होगी

फिर नाथ तुम्हारा दखूँगा
तुम तो विनाश की ज्वाला हो?
तुम ही तो पत्थर के आगे
लटकाया करती माला हो?

दो दो पुरुषों की नारी तो
चंपटी नक-कटी होती है
मैं पर गिरधर की दो असियाँ
क्या एक श्याम मं सोती हूँ ?

संघर्ष बिना जीवन दूभर
अपना संघर्षण हा देखो
नीरस उन्मनता दूर हुई
फिर नय आकर्षण ही देखो !

बोला संघर्ष आपका तो
तन तक हा सीमा रखता है
सारा जग ही हत्यारा है
मन यह ही सदा निरखता है

संघर्ष नहीं तन तक सीमित
तन का मन का संघर्ष मधुर
मन का विचक तन का विकास
मिल जायें पुन बजें नूपुर

संघर्ष सोम का उद्‌गाता
जीवन में ज्योति जगाता है
अन्याय कालिमा दुराचार
जीवन के दूर भगाता है

संघर्ष तिमिर-तोमों स हा
जिसस जग हाय भास्वान्
विष पाप असत्य अधर्म ग्लानि
जिसमें होवें लय नाशमान्

प्रिय बोले जो यह दूर दूर
प्राकार दिखाई ..ता है
यह बड़ा सबाड़ है दुर्गम
यह सबसे बड़ा विजेता है

उसके पीछे अगणित योद्धा
अभिलाष दबाये जाते हैं
आक्रामक बस निहार कर ही
पीछे मुड़ते हैं रोते हैं

कहते हैं उसके द्वारों को
हाथी भी पेरा न तोड़ सकें
तोपों के बड़े बड़े गोले
उसको कुछ भी न मरोड़ सकें

मैं उस पर कभी कभी बैठा
अनुपम सुख अनुभव करता हूँ
यह महा प्रतिष्ठा का आलय
अभिमान लिये पग धरता हूँ

मैं सोचा करता हूँ ऐसा
कब सुन्दर अवसर आयगा?
जब यह सिंहों का शावक मा
जीवन—सर्वस्व लगायेगा ?

यह मातृ-भूमि मेरी मुझको
जग भर से प्यारी लगती है
इसके सम्मरण मात्र से हो
जीवन में आशा जगती है

माता प्रिय-वदन निहार रहा
वक्षस्थल फूला जाता था
आ बार बार ही जननी के
सम्मरण ज्वलन्त जगाता था

थाली सजकर जाऊँगा तब
मैं भी माला पहनाऊँगा
असिधार हाथ में दे दूँगा
मस्तक पर तिलक लगाऊँगी

जब युद्ध जीत आयेंगे तो
आरती उतारूँ गाऊँगी
अन्यथा अंक में सिर रख कर
मैं भी कर्तव्य निभाऊँगी

माँ, जननी! तू कितना उज्ज्वल?
तेरा मुख कितना शीतल है?
तेरी महिमाओं के समक्ष
जग भर का कंचन पीतल है

पर, स्वभावतः लड़ना भिड़ना
मुझको कुछ भी न सुहाता है
सब रहें प्रेम से हिल मिल कर
मुझको तो यही ही भाता है

यह जीत रक्त से लथपथ है
इसमें तो हाहाकार भरा
जय श्री के ध्वज के नीचे
शापित-कम्पित सुनसान धरा

दुर्बलता सबसे बड़ा पाप
दुर्बल होना अन्याय यहाँ
दुर्बल मनुष्य के जाने का
कोई भी नहीं उपाय यहाँ

जो शक्तिमान् वे दुर्बल का
सर्वस्व चुराया करते हैं
दुर्बल की नारी को सब ही
भाभी बतलाया करते हैं

धर्मों कर्मों के चक्कर में
मानव का स्वार्थ समाया है
ऊपर नीचे पश्चिम पूरब
नभ जल दिगन्त तक छाया है

ये धर्म-युद्ध नारी समत्र
वसुधा के कारण होते हैं
हँसने वाले हँसते रहते
रोने वाले ही रोते हैं

बन चले जगत् पर शान्ति मेरा
सो मैं न किसी को लड़ने दूँ
जीवन-पथ पर सब बढ़ें चलें
आपस में नहीं झगड़ने दूँ

वह देख रहा था झरने को
जो दूर दूध सा बहता था
जग-तृषा बुझाओ सजल करो
बन जाओ जो कहता था

उसके तन में उसके मन में
निर्मलता मंजु झलकता था
शापित पापाओं पर भी तो
आभा अभिराम छलकता थी

झालों का रोना आई भी
जग-दुख से मन भर आया था
प्रिय के समीप मट कर बन
निर्झर का जीवन भाया था



अष्टम सर्ग



जिस रज पर लोटा हो शरीर
उस धरती की लघु कणियों भी मन को करती रहती अधार
जिसके दर्शन के लिए मनुज के आतुर रहते सतत प्राण
धाराएँ तृण वन दूना उसका चिर परिचित धूल प्राण
मलयानिल के झोंके उसके आगे गाते हैं सभी द्वार
उसका सा शीतल वक्ष शान्ति सन्तोष राग का मधु द्वार
वह स्वर्गंगा का पुण्य-नीर

उस भू का सुकोष्ठधाम व्योम
विस्तृत दीपित नीरव अनन्त अंचल में शतिमय अरुण सोम
विन्ध्याचलियों के मधुर कण्ठ भरते रहते अभिराम तान
मातृभूमिनियों का नव नर्तन जिसमें अजन्तों का मुग्ध गान
सुरधनु का ललित कलाओं का जिसमें अंकित साकार रूप
जगतों की मंजुलताओं का सूक्ष्मातिसूक्ष्मतम सरस स्तूप
पुलकित कर देता राम राम

तरु, कोटर, सर, घर, द्वार, डाल
जिनका प्रति धड़कन में लिपटा अहि कुंडलियों सा स्नेह-जाल
ऊँचे, नीचे, टेढ़े मेढ़े, साधे, दुर्गम पथ, जो विचित्र
आमंत्रण देते मौन, लिये आकर्षण जैसे जन्म मित्र
सपनों में करते खेल सदा जो भाँति-भाँति के लिये वेश
चिर निद्रा के पीछे भी जिनका रहता अंतिम स्मरण शेष
जीवन में मरते सदा साथ

यों सोच रही आसीन मौन
उर के तारों को छूता था जाने अविरल अज्ञात कौन !
श्वसुरालय से पीहर लौटी वह भोरी स्मृतियाँ लिए साथ
तन मन की अभिनव रचना में जिनका पूरा ही रहा हाथ
दृग झाँक रहे थे दूर, खुले थे वातायन के लघु कपाट
बचपन का परिचित रज प्रांगण, पर्वत प्रदेश, संथाल-घाट
ज्यों कहते थे सानन्द हो न !

परित उठता था यही गान
पर वह खोई खोई सी थी, सुनते थे नीरस बने कान
दृग देख रहे थे दृश्य किन्तु अन्तर् में प्रिय का विदा-प्रात
प्रत्यावर्तन हो आज तुम्हारे बिना हृदय है शुष्क पात
आकुलता, नीरवता, विषाद प्रिय के आते थे बन याद
पाहुन आने की उत्सुकता में घुला गहन जिनसे विषाद
बन हो आई पर रही म्लान

कितने ही दिन थे गये बीत
जिनमें जग भर के दुख-सुख का कितना ही बदला दिखा, रीत
जीवन का क्रम श्वसुरालय के चिन्तन-पथ पर चलते अबाध
प्रिय चिन्तन में ही भरा था, दुख मिलन का हो रहा राध
जब होश तो यह क्रम टूटा, मिलन दौड़ा फिर भूत काल
परिवर्तन हो परिवर्तन जिससे घूम रहा था शून्य भाल
फिर जाग पड़ा था मधु अतीत

पीपल का वह प्राचीन वृक्ष
दोपहरी का जो शयनकक्ष, सब सुख रहे जिसके समक्ष
वे हरे भरे थे शुष्क पर्ण, जिनका संचय था नित्य कर्म
नौका बनती ऊपर पवन का जान सकेगा कौन मर्म ?
फुनगी फैला कहता था ज्यों आओ, मेरे सुकुमार फूल !
जीवन परिवर्तित हुआ अधिक, क्या मुझको भी तुम गईं भूल ?
था खड़ा विहग ज्यों छिन्न-पक्ष

सूखे बिखरे थे सभी पात
थे काँप रहे थर थर थर बीता था नवयुग का प्रभात
वे मृदु पल्लव जिनसे प्रतिक्षण था आँख मिचौनी किए खेल
जाने कब कौन कहाँ विलीन हो गये ले गया कौन पल !
उनका सूखा, सूना शरीर कहता था वे भी लिये खेद
भू में खोये मिट्टी बन कर अस्तित्व न कुछ भी रहा भेद
कुछ भी न यहाँ अब रहा बात

उस पीपल के वासी विहग
सून-सूने में उड़ते थे सब चला गया था राग रंग
अब नहीं पास उड़ आते थे पर तब करते थे उछल कूद
गायन गाते हँसते आते फुनगी पर भाते नयन मूँद
जब करते बात पकड़ने को तो आते फर फर दूर भाग
दोनों पर फिर आ डटते थे चिड़ियाँ कपोत शुक कुक काग
तब कितनी थी सुन्दर उमंग !

सुनसान पड़ा था सिद्ध कूप
पंना छनता था जैसे हमको बन्द गया है सभी रूप
झुक-झुक कर, झाँक-झाँक अविरल जिसमें करते थे मुग्ध भाव
फेंका करते कंकड़ फिर भी रहता था मौन स्नेहस्नात
जिसके अंजुलों का पानी हर लेता था सब देह ताप
तिरता भागता खाकर क्रीड़ा जिनके मुख का कुछ नहीं माप
सहता एकाकी शरद् धूप

अष्टम सर्ग

पनघट-शृंगों पर मौन मोर
बैठा-बैठा टक टका रहा था माँग से थे नयन कोर
अरुणोदय होते ही शुगन आ जाता था अत्यन्त पास
मोरनियाँ भी आ जाती थीं, जम जाते थे फिर नृत्य रास
सुन्दर पाँखों के शुभग में कितना होता उत्साह शान्त
पाँखों को गिन गिन कर रखना पीछे-पीछे फिरना सुखान्त
वे दिन थे सचमुच और भोर

सोते थे जिस पर पग पसार
वह शय्या कोने में दुबकी जैसे कोई गहरा विचार
सिर हाथ पैर फैला कर कर जाग थे जब जब आँख मीच
नन्हें मृदु, कान्त बिछौने व मखमल से द्रव हृदय सींच
थपकी दे दे बहती हवा ऊषा की प्रिय शीतल समीर
दिनकर उगता दिन चढ़ जाता, फिर भी वह कब होता अधीर!
अनुपम था उसका वह दुलार

भूले भूले हो गये पात्र
जिनमें करते इच्छानुसार थे खान-पान सब अहाराज
भोजन करने की लघु थाली चुपचाप पड़ी नीरस उदास
जीवनमय, सजल कहाँ निर्मल पानी पान का भी गिलास!
चम का लघु कुका कहती थी आभा, वैसे ही करो स्नान
कितने ही हाथों से छूटे टूटे आते स्मृति में अजान
जीवन सहचर जो एकमात्र

झाड़ी-आराम वह सुखद बाग
छुपक छुपक, अवसर निहार जाते थे जिसमें भाग-भाग
गिलहरियों की ज्यों चढ़ जाते दुर्गम पेड़ों पर भी समान
कोई रहता ऊपर साथ मृदु मधुर फलों का किये ध्यान
फूलों के गुच्छे जहाँ कहीं देखे तो झट त्वरित तोड़
मृदु हरी दूब पर लड़ने का आपस में करते सतत होड़
भरता अब जीवन में विराग

पावस के सुन्दर, रुचिर मेघ
रीते राते से लगते हैं बीता ज्यों उर का मधुर वेग
आओ, आओ बरसो बरसो आवाहन करते निर्निमेष
हर्षित, गर्वित होते, हरती प्रिय इन्द्रवधूटी सभी क्लेश
रिमझिम रिमझिम बूँदें पड़तीं, करते थे नंगे बदन स्नान
मिट्टी के घर बुनते सुन्दर, प्रासादों का था तुच्छ मान
झूलों पर बढ़ते साथ पग

जाड़े में मिलते मित्र जाग
सम्मिलित स्वरों में आतप का आमंत्रण करते लिये राग
मन हरते थे बकरी भेड़ें, गायें भैंसें खर अश्व श्वान
परिचित से मित्र बने रहते व्यवहार प्राकृतिक था समान
ब्याही कुत्ती के लिये माँग लाते घर से गुड़ चून तेल
छकड़ी चुनते हलुवा घुटता कुतिया खाती सब बाल्य-खेल
तब कितना था अनुराग, त्याग ?

सब अपने-अपने लगे काम
वे पशु-पक्षी वे मित्र-वृन्द जो साथ रहे नित सुबह शाम
कोई भूला, कोई फूला, कोई परिस्थिति में पराधीन
इस पार रहा उस पार गया कोई निधन कोई अधीन
जो स्रोत एक उद्गम स्थल पर बहता था लघु-लघु मधुर शान्त
वह विविध विभागों में खोया, चंचल लहरें अविराम भ्रान्त
बन्धे सुख-दुख हिम, शीत घाम

वह सब, सपना रह गया शेष
वह अल्हड़ता वह चंचलता भरना जीवन में कल्पित कलश
लघु-लघु से उस पथ के यात्री मित्र बिछुड़ गये छिप रहा धूप
बदली यह गति तन-मन बदले बदले जीवन के सभी रूप
बिछुड़ा लहरों की तरह मौन हो जाता अनजान मिलाप
पर मिलन में क्या सुख होता ? ज्यों-ज्यों मिलता है आज ताप
मिलना भी देता आज दंश

किस शून्य गुहा का घोर द्वार
मरणोदय में ही स्थान हुई यह मेरी सजनी भी उद्धार !
अब किसकी गोदी में सोऊँ किससे अब पाऊँ वह दुलार ?
कष्टों को सहकर, बदन चूम जीवन का हर दे कौन भार !
किसके अंचल की मृदु छाँह मुसका कर देगा अब सँभाल !
किसकी मृदु वाणी से अमृत झर-झर झरेगा हिय नभ ?
खोया जीवन ने मातृ प्यार

देखा मैंने यह सुमन, श्रान्त
मानव जीवन, जो नहीं एक सीधी गति से जाता समान्त
जगती के विविध कलापों के लगते इस पर आघात घात
अधिकांश व्यक्तियों का जिससे रुक जाता जीवन का प्रपात
विचलित होकर वे इधर उधर हो जाते जीवन में नितान्त
जगती के सुख आनन्दों को फिर लूट नहीं सकते हताश
मिलता न पूर्णता वह सुखान्त

इच्छाओं का ऐसा वितान
जिसके उर में जितना होता होता वैसा जीवन विधान
इच्छाओं से अन्यत्र पृथक् जीवन का सत्ता नहीं व्याप्त
इच्छाओं में ले जन्म मनुज इच्छा में ही होता समाप्त
इच्छा ही है मनुष्य जिसके मन का अमर स्पन्दन-स्वभाव
वैसा ही जीवन चलता है जैसे हों बनते हाव भाव
उर का संवेदन ही प्रधान

जीवन के पतित दुर्निवार
अविरत अगोचर रूप लिये पलते रहते हैं संस्कार
जिसका प्रभाव कल्पना-शील मन पर पड़ता समयानुकूल
अस्तित्व संस्कारों का यह अणु-अणु में रहता लिये मूल
इन भावों का अनुसरण-यत्न करना रहता है अन्तराल
भावों का किया बाद देना बन्धन को गत्यवरोध आज
इसलिये मनुज शक्ति अपार

जीवन के क्षण प्रत्येक आप्त
पूर्णता प्राप्त करने में ही होते रहते प्रतिक्षण समाप्त
मानव-जीवन दुष्पत्ता के अंगारों का अस्पष्ट धूम
प्रत्येक अग्नि के कण विनाश की शान्त भस्म को रहे चूम
ये सुलग-सुलग कर कब कितना विस्फोट करेंगे नहीं ज्ञात
क्षाराप्त रहें यदि सुमनों यह भी सब है अज्ञात बात
जीवन रहस्य है तिमिर-व्याप्त

जीवन के क्षण संक्रान्तिकाल
संक्रान्ति-काल का प्रति स्पन्दन रखता अपनी सत्ता विशाल
जगती में जो नाना विचित्र घटना हैं घटनाएं अनन्त
जिज्ञासा पर भी नहीं कभी मिलता उनका उद्देश्य-अन्त
क्षण कभी सतत चिन्ता करते हँस देते फिर वह प्रश्न मूल
इस ही उलझन में द्विविधा में जीवन का आता निकट कूल
उलझा ही रहता जगत्-जाल

सुख दुःख ही लहर राग द्वेष
दोनों जीवन के मुख्य तत्त्व अन्तिम क्षण तक ये रहें शेष
किरणों का मण्डल बन सूर्य रश्मियाँ सूर्य से नहीं भिन्न
दिनकर किरणों से नहीं पृथक एक ही वस्तु दोनों अभिन्न
आत्मा विशुद्धि विस्तार अधिकता के सुख हैं अभिराम भाव
उसका संकोच, अल्पता दुःख दोषों का छलनामय दुराव
दोनों रस नित हय ढेम

मानव सुख-दुःख का घना स्पर्श
जितना जीवन में है विषाद उतना ही है आनन्द, हर्ष
वैभव, विलास के मधुर साथ जीवन में होते ना न तृप्त
मानव को ये घर रहते वह भी रहता अविराम लिप्त
इस पार रुदन क्रन्दन सिवाय कुछ भी होता है नहीं प्राप्त
फिर भी मरीचिका को ज्यों वह उस पथ पर हो संलग्न व्याप्त
सम्मिश्रित अपकर्षोत्कर्ष

जीवन वट सा विस्तृत अनन्त
सुख औ दुख की दो शाखाएँ जिनसे आच्छादित दिग् दिगन्त
ये सघन पर्ण, अभिलाषाएँ जो हरी भरी कोमल ललाम
विहगों के दल हैं स्वप्न जाल उड़ते नभ में जो बिन विराम
नीचे छाया में अंधकार ऊपर है आशा का प्रकाश
हासाप्लुत मानस का उमंग, कर उठती है जो अट्टहास
जो मूल, छोर, उनका न अन्त

जीवन में सबसे बड़ा मूक
होकर लगाता, करता सचेत, फिर भी रहती है दृष्टि स्थूल
ममता, माया सम्मोह, स्वार्थ के आवरणों में ढका, ध्यान
कुछ ज्ञान नहीं पाता मानव, यह सत्य चिरंतन समीचीन
अपनी भूलों के साथ युद्ध करना ही जीवन, सत्य तथ्य
पर वह अपने क्रम पर चलता करता भूलों से नहीं पथ्य
थक जाता है यह मूल - मूक

प्रतिध्वनित नहीं होता अतीत
जिस जीवन में उस जीवन का होता अविराम भविष्य भीत
उसके भविष्य की आकृतियाँ होतीं तम-अंतर् में निमग्न
सुन्दर पथ का स्वर्णिम रथ्या नीहार तिरोहित, अस्त मग्न
प्रतिपल संजीवित रखता है इस वर्तमान को वह अतीत
दोनों का यह सम्बन्ध सुदृढ़ बन दिन सम्भव जय प्रलयगीत
यह परम्परा मानव-अभीत

अपने को मानव पूर्ण ज्ञान
औरों को पामर हीन समझ कर उगता है दर्पाभिमान
अविराम हँसाया करता है उसको दुर्मति का अंधकार
वह साथ-साथ मुस्काता है भ्रम सीमा का नहीं पार
अपने को हीन समझता है तब ही उगता है वह अज्ञान
सामर्थ्य हीनता और शक्ति द्वन्द्वों में जीवन का विधान
दोनों की मात्राएँ समान

शाश्वत है निर्मल सत्य तत्त्व
वह परिवर्तन से दूर एकरस अजर, नित्य उसका समत्व
अरुणोदय होता नहीं म्लान जीवन भर भी प्राचीन, जीर्ण
चन्द्रिका निरंतर ही समान, लगता न कभी म्रियमाण, शीर्ण
इसलिए क्योंकि वह नहीं सृष्टि मानव का, मानव है अपूर्ण
सीमित-आकांक्षा रखता यों उससे निर्मित सब नहीं पूर्ण
प्रतिक्षण परिवर्तित मनुज-स्वत्व

स्वर्णिम आदर्शों का वितान
जिसमें छिपती है मनुज-जाति है महा आवरण का विधान
दुर्गुणों और दुर्बलताओं का मानव गहरा लिये भार
अपने को समझ बैठा है देवता स्वयं ऊँचा उदार
जगती को रँगी हुई आकृति दिखलाता वह कृत्रिम स्वरूप
उर-तम में छिपा हुआ रहता उसका सच्चा वास्तविक रूप
वह सत्य सदा जीवित महान्

मिट्टी का भंगुर असत् पात्र
उसमें भी रखी हुई सुधा का मूल्य न कम सत् एकमात्र
प्रत्येक मनुज के अन्दर में अंकुर सद्वृत्ति के विद्यमान
उनको विकसित कर प्रकाश में लाना सुन्दर वास्तविक ज्ञान
ज्यों ज्यों होता जाता विकास जीवन का स्तर भी वर्द्धमान
ये शक्ति-ग्रन्थियाँ खुलने पर मानव हो जाता है महान
अमृत का घट यह दिव्य गात्र

आवश्यक है यह परम धर्म
मानव के लिये अपरिमित है, इससे सुन्दर कुछ नहीं कर्म
अपने जीवन में यह समान जीवन का चिन्तन करे गहन
उनका साधारण गूढ़ मनोवृत्तियाँ हृदय में कर वहन
उन भावों को सम्मुख रख कर भावों पर सूक्ष्म दृष्टि डाल
भावों में ही घुल मिल जाये है यही महत्ता मुक्ति-माल
दे जाय जग का सूक्ष्म मर्म

भावों की सत्ता में विलीन
व्यक्तियों की विशेषताएँ हो जातीं ज्यों जल-बीच मान
सब उच्च-क्षुद्र निज सुख-दुख से हँसते रोते समयानुसार
उठते नाचते, ये सब हैं केवल भावों के ही विचार
ऊँचे भावों से प्रेरित हो जो करते रहते कर्म परम
वे अध्यवसायी महामनुज कर देते सीमा पार चरम
जीवन भी क्या भावना हीन!

जीवन का पथ निर्माण-कार्य
क्षण प्रतिक्षण सपने हों सुन्दर जगती की पीड़ा कष्ट हार्य
अपनी जीवित वेला में ही अपना सुख धन वैभव विसार
जग को कुछ देना, फिर अनन्त शून्य में शान्ति से पग पसार
सो जाना ही सच्चा जीवन जिसमें न प्रदर्शन मृषोन्माद
मृत किये सत्य की गठरी को ले जाने में होता विषाद
बनता जीवन बोझिल, न तार्य

पृथ्वी पर दोनों नरक, स्वर्ग
बन्धन न रहे तो क्या रक्खेगा मूल्य यहाँ अपवर्ग का!
दूसरा एक का पूरक है, दोनों से दोनों का महत्व
रजनी के गहरे अंधकार दिनकर की आभा में समत्व
इन नरक स्वर्ग की छाया में जीवन का तनता है वितान
जिसमें सुख दुख आह्लाद व्यथा का गुंजरित होता नित्य गान
दोनों जीवन के मुख्य सर्ग

नभ में कितने ही ग्रह अपार
प्रतिपल जन्मते हैं नित्य पहुँच पाता कोई ही ज्योति द्वार
ऐसा कोई भी नहीं मार्ग जिसमें तारों का हो न जाल
चलते रहते घूमते रहते रुकता क्रिया का नहीं काल
पर कितने ही ध्रुव ज्योति लिये अन्तिम पग तक भरते प्रकाश
टूटते-टूटते भी नभ हर दल उज्ज्वल होता विनाश
सबका होता उनका विचार

मानव करुणा से द्रवित प्राण
होता है जितना बार जन्म का बहता उतना बार स्रोत
सम्वेदनशील हुआ करता इसका जब जगती का समस्त
संगीत मधुर प्रतिध्वनि बन कर गुंजित होता प्रतिपल प्रशस्त
उस क्षण जीवन उन्मुख वहाँ जा सकता है यह निर्विवाद
सुखावस्था के बिना हर्ष-दुख, हानि-लाभ माया-विषाद
करुणा जीवन-आधार-पोत

जीवन वास्तविक न मृत्यु मात्र
यह सतत मृत्यु की छाया में क्रीड़ा करना कल्पनातीत
उसका रहता है लक्ष्य मृत्यु को करना है प्रतिपल पराहत
अपनी वास्तविक मृत्यु में ही जानना मृत्यु को यह कृतान्त
कोल्हू के अनड्वान् की ज्यों बँधना जीवन का नहीं काम
सुन्दर जीवन के इंगित पर नाचती मृत्यु नित यातकाम
निर्मल जीवन की मृत्यु क्रान्त

जगती में मृत्यु महा रहस्य
मानव-जीवन में एक मृत्यु ही अटल सत्य शाश्वत अवश्य
जीवन में कोई अशिव वस्तु यदि है तो वह है मृत्यु नाम
उससे भी अधिक भयंकर है उसका भय पाशविक अनाम
वस्तुत मृत्यु-कल्पना दुरन्त वह महा भयानक, महा घोर
जीवन विकास के क्रम का ही अपमान मृत्यु, हृद् प्राण-चोर
उसकी स्पृहा में जगत् सत्य

प्रत्येक मनुज की यही चाह
वह सुख में जीवित रहे सदा जीवन में आ पाये न दाह
यद्यपि जीवन का अंत अवश्यंभावी परिगणित विद्वान
पर भान मृत्यु का सुनते ही भय विह्वल होता कम्प-स्थान
जिस भाँति अधिक से अधिक प्राप्त हो जीवन रहता यही ध्येय
ईप्सित कामना किया करता इस प्रकार अनजान, अगेय
बढ़ता रहता है मृत्यु राह

कुछ भी न असत्-उत्पन्न, ज्ञात
है असत् मनोभव जब मन कुछ देखता न सुनता ध्येय-ध्यात
जब मन से लक्ष्य दूर होता, इसमें बाहर उसका निवास
अस्पष्ट अगोचर सत्ता का किंचित् भी होता नहीं भास
"कुछ नहीं यहाँ, है शून्य यहाँ" यों कर उठता तब चीत्कार
पर शून्य अनत अपरज्ञात

तम में इसका सच्चा स्वरूप
किंचित् भी मृत्यु विषय में हम जो जानें वह है बाह्य रूप
जो यह कहते हैं हमने तो इसका रहस्य सब लिया जान
वस्तुतः बाह्य के अनर का ही होता उनको इष्ट ज्ञान
उनके अल्पागम नयनों में जाता है केवल चौंध बाह्य
आवरण, मृत्यु के स्तर असीम, जीवन से परे न गम्य ग्राह्य
दानव महमान अंध कूप

विस्तृत अवर्णों के तुंग शृंग
उनमें निस्सृत सरिता जैसे लहरों में भर भर कर उमंग
म मार्गों उपलकाओं, घन प्रांगण को करता हुई पार
विश्राम न लेना उस क्षण तक जब तक न अब्धि में लीन धार
वैसे ही जीवन भी मिलता है मृत्युकणों में एक रूप
जीवन का अंतिम लक्ष्य मृत्यु आलिंगन सम्मिश्रित स्वरूप
ज्यों कपि-संपुट में बद्ध मृग

ऐसा भी आता कभी काल
जिसके क्षण साधारण क्षण से अत्यन्त भिन्न होते कराल
उस क्षण लाते भावक अपार संताप स्वयं अस्थिर, भ्रान्त
जीवन में इतना अंधकार त्रुटियाँ, संघर्षण विद्यमान
जिनकी कल्पना मात्र से दुस्तर प्राणों ऊपर अपार भार
आहत हो यत्र तत्र रक्षण के लिए किया करते पुकार
वह काल मृत्यु का दृश्य जाल

पूर्णता मृत्यु जीवन न पूर्ण
सधप स्थूल जब जीवन को ढक लेता है कर सूक्ष्म चूर्ण
अपनी सामयिक संकुचितता का मुक्त चिरंतन आत्म भाव
उसके विस्तार किया करते नवसृष्टि, चतुर्दिक स प्रभाव
उत्था पतन का संसृति क यह ही रहस्य मानव शरीर
भौतिक अतर आध्यात्मिक ह दोनों मिलकर ही पार तार
जीवन के स्वप्न अत अपूर्ण

सत्ता-सीमित त्रुटि-हीन ज्ञान
जिसका आश्रय लेकर निगूढ़ दुरस्य उलझनों का वितान
सुलझाना मनुज चाहता, होता अतः विफल अस्पष्ट ध्वान्त
देवी माया कुछ नहीं काम उस स्थल पर मौरव नयन शान्त
वाणी न कुछ कह देते हैं, जीवन रहता अस्पष्टधूम
वह मृत्यु रहस्य जानने को इच्छाएँ व्याकुल घूम घूम
छाया पथ पर अग्रसर अजान

जीवन के पथ पर प्रगतिशील
मानव पल प्रतिपल परिवर्तन पाता जाता कल्पनाशील
वस्तुतः जगत्, यह प्रकृति स्वयं क्या बदल रही ? पर यह न बात
निर्मित जिन स्वयं उपादानों स हम वे क्रमशः हुए पात
है निज गुण धर्मों का संगत होना यों परिवर्तन प्रतीत
बचपन यौवन-इच्छा वृद्धावस्था में जाती स्वत बीत
यों स्वतः पहुँचता मृत्यु-काल

सर्वत्र मृत्यु है विद्यमान
हिम आवरणों में ढक अद्रि नभ में निहारते शान्त ध्यान
सागर के विस्तृत अन्तर में अगणित उठती रहती तरंग
ये ज्योति पिंड जो सूर्य चन्द्र जिनके उर में उल्लास-रंग
भौतिकर बिखराता रहता आलोक-छटा में मधुर हास्य
शार्दूल-अंचल अरुणिम में अँगड़ाई लेती धरा लास्य
इनके भी हरती मृत्यु प्राण

है मृत्यु शान्ति का अमर अंक
मलयानिल सा शीतल, सुखकर ज्यों शरद्-काल में सम मयंक
परित अशान्ति, जग का कण-कण आप्लावित इससे दिवस रात
प्रति प्राणों में, प्रति कंपन में प्रतिपल अशान्ति का चिर प्रपात
बाहर अशान्ति से त्राण के करता मानव नाना प्रयत्न
जीवन अशान्ति है मृत्यु शान्ति, जीवन में एक अशांति रत्न
कमलों को धारण किये पंक

तुम किस चिन्ता में हुई लीन ?
उसने देखा सामने खड़ी उसकी लज्जिता दासी अधीन
वह कहती जाती थी देखो, कितना ऊपर चढ़ गया घाम ?
कब लगा गई थी पहले मैं घर भर का मैंने किया काम
तुम क्यों उदास सी बैठी हो ? क्या तुम अस्वस्थ हुई कहो न ?
मैं देख रही हूँ खड़ी खड़ी तुम चिर बैठी से रही मौन
मैं समझ गई तुम मातृहीन

पर, इस चिन्ता में कुछ न भास
आवश्यक कामों से निबटो, दुख, चिन्ता को कर दो समाप्त !
उसने कर फेरा मस्तक पर फिर चली गई वह कर दुलार
पर उलझन में उलझा मानों के अंतर पर पड़ गया भार
सोचने लगी वह यों इसका जीवन कैसा दुखमय अनन्त
पति-सुत-सुख से वंचित बचपन की विधवा दुखिया हन्त हन्त !
जीवन-कण कण में कष्ट व्याप्त

आधार रहा बस तिरस्कार
मा-बाप अल्प वय में ही मर गये रह गई निराधार
अपमान, लांछना में पल कर पल-पल क्षण गण दिन गये बात
यौवन आया, पर दुखों पर कामी कुत्तों ने लिया कात
जारज सन्तान हुई वह मा जा सका नहीं पति स्वत्व-प्यार
वासना-मंच पर हार गई वह कर कर सब क्रीड़ा विहार
जर्जर नौका मझधार धार

मारी

मेरी मा मर कर स्वर्ग धाम
सब चली गई तो इसने ही मा की ज्यों मेरा किया काम
मैं हुई बड़ा बचपन न रहा, पर इसका पावन वही प्यार
इसके सम्मुख अब भी मुझे नहीं बिटिया पाता दुलार
जीवन का घड़ी बड़ा झमा इसके अंतर में आज मौन
जीवन कंटकमय, पर फिर भी सुन्दर उपदेश वही अदीन
अंतर् में प्लावित श्याम श्याम'

स्मृतियों में अब भी एक बात
करुणा पूरित यातना भरी जो कही इसी ने एक रात
बिटिया मेरा नन्हा नन्हा बच्चा ज्वर से था अति बिमार
कोई भी पास न आया जो हर लेता कुछ तो व्यथा भार
जब तक यौवन तब तक उसकी रहती थी प्रतिपल मची लूट
जीवन में बारबार अथक पीती आई हूँ गरल घूँट
शिशु का भी रह पाया न गात

ऊपर से गोरा है स्वरूप
पर, अंतर् में अंकित अगणित पशु-जन-दल की वासना-रूप
व्यभिचार दुराचारों का तम इसके अंतर् में विद्यमान
करुणा-क्रंदन, चीत्कार घोर जीवन भर छुब्ध रहे प्राण
इसके अंतर्मन, कण-कण में बाधा पीड़ा चिन्ता, विषाद
फिर भी मेरी आशा बन कर देती रहती आल्हाद-याद
स्वर्गंगा सी पावन अनूप

परियतम अति गहरा विशोक
भारग भी था, वह बंधन था, छाया था मन में अधिक शोक
वह सोच रहा था दूर दूर यातायात में, थे अपस मग्न
भगमाय ‖ हा श्वास रह ये हर मेरे मा सजल नेत्र
उसका मन साधिन विधवा था, वह नहीं सोच पाई उपाय
कम जीवन किन कटेगा, जीवन भर घुटन हाय हाय ?
अभिलाषा कोई सके रोक ?

उसको कुछ ऐसा हुआ ज्ञात
इस मर्त्य लोक में तो केवल दुख ही दुख है आघात, घात
ये चाचा ताऊ सब परिजन चाए दँग एकाकी अज्ञान
नाते नाते के ही झगड़े हैं मिथ्या है सारा जगत-गान
जयमल वयस्क हो गया साथ ममता छूटती नहीं आज
मन की हो नई बसा दुनियाँ सब अपना-अपना लिये काज
उर लगा गूँजने गान स्वात

दूर हुए तुम, दूर हुआ मैं, क्षण प्रतिक्षण का मिलन कहाँ अब ?
वे भी दिन थे साथ रहे हम प्राणों में झंकार नई थी
नन्हें मन के प्रिय सपनों में निर्मल मलय-बयार बही थी
श्रद्धा थी, विश्वास घना था तब दुनियाँ थी और निराली
झूठ-साँच, सुख-दुख द्वन्द्वों से दूर रहा जीवन का डाली
एक प्राण थे एक प्राण थे भेद भाव का नाम नहीं था
घन-छाया थी ग्रीष्म-काल की दोपहरी का घाम नहीं था
जीवन बदला, कंटक पथ पर हँसते चलते जलन यहाँ अब



नवम सर्ग

★

मन्दिर का घंटानाद बना आवाहन
मुखरित मृदंग था आकर्षण का वाहन
पथ दीप-वर्तिकाएँ आलोकित करतीं
आरती दृगों में स्फूर्ति चपल गति भरती

पीड़ित जन की आरती व्योम में छाई
ऊपर की ओर लगी आँखें भर आईं
मस्तक था नत आभागत थे नर नारी
उद्वेलित अन्तर् प्रान्त कष्ट था भारी

जन-जन के प्रिय युवराज रूप-यश शाखा
अत्यन्त व्यथा थे भाव घनी थी कांक्षा
भ्रमरों के पथ में उलझ गई थी नाका
दुष्कर किंचित् प्रतिकूल पवन का झोंका

मन्दिर घर घर में द्वार द्वार आराधन
हे प्रभु! युवराज हमारे पायें जीवन
नत गात थे वक्ष भाव निरन्तर
कारा-बन्दिन स्वाधीन उच्छल उमंग

पूजा का स्वर, जन का करुणा कोलाहल
क्षण भर में लीन हुआ अम्बर में चंचल
सब अपने-अपने कर्म निरत नारी-नर
उदयाचल पर कुछ चढ़ आये थे दिनकर

क्षण भर पीछे आ पहुँचे राज चिकित्सक
सब कुछ निहार कर चले गये ज्यों शिक्षक
निशिदिन आवश्यकतानुसार आ जाते
सन्ताप, धैर्य अति परिजन को दे जाते

ज्यों-ज्यों करते उपचार रोग बढ़ता था
तन होता था कृश, वह ऊपर चढ़ता था
माराँ का सारा अस्त-व्यस्त था वैभव
सूनी-सूना सी थी ज्यों मिला पराभव

जल-हीन वल्लरी सी थी वह कुम्हलाई
उज्ज्वल भविष्य म्रियमाण, अँधेरी छाई
दुष्कर उसका पीड़ा विपत्ति का वर्णन
सन्ताप-व्यथा में झुलस रहा था सज्जन

वह छाया का ज्यों था सेवा में खोई
इतना तत्परता कर न सकेगा कोई
कितना [illegible] काली निशा दृगों में काटा
अपनी सुख-साधन-वस्तु जनों में बाँटा

पीती जल भी न जरा, हो जाती सन्ध्या
पति-सेवा में तल्लीन धन्य वह वन्द्या
निशिदिन शय्या के पास मौन रहती थी
भावों का सरिता में तृण सा बहती थी

प्रिय कहते तुम क्यों व्यर्थ कष्ट लाती हो!
पीलो जल, भोजन क्यों न प्रिय! खाती हो!
मैं जीऊँगा अब नहीं मृत्यु चढ़ आई
जीवन-दीपक पर क्षुब्ध वायु मँडराई

सुनती यह उसका हृदय टूट सा जाता
मस्तक बोझिल, सव्यथित घूम रह जाता
जीवन का सारा स्नेह गिरा में भर कर
आशा भर देता मस्तक पर कर धर कर

मृदु कर का अमृत स्पर्श शान्ति भर देता
जीवन की व्यथा निराशाएँ हर लेता
प्रिय मुस्काते मीरां को स्वयं हँसाते
आशा लहराती, मिलता सुख अनजाने

सोचते कुँवर, यदि मृत्यु हो गई मेरा
तो हतभागा यह कहाँ रहेगा मेरा ?
धन धान्य सभी होगा विलास वैभव का
पर, आशाओं में नाम न कुछ कलरव का

मैं नहीं रहूँगा तो यह भी न रहेगा
मैं सुप्त रहूँगा पर यह कष्ट सहेगा
है नारी! जीवन हेतु, हेतु यह तेरा
विधवा का जीवन व्यर्थ, कभी न सवेरा

सोचते-सोचते करुणामय हो जाते
चिन्ता चक्रों में उलझ-उलझ सो जाते
सपना आता मीरां प्रवाह में गाई
आधार हीन असहाय जान कर रोई

मकरों का लोलुप मुँह राह सुख खोले
स्त्रा में ग्रास बनाते अविरल डोले
चौंकते अधिक करुणा क्रंदन सा करते
मीरां पुकारती ध्यान वास्तविक धरते

झुँझलाहट होती उन्हें स्वयं अपने पर
मँडराता बारबार ध्यान सपने पर
करते विचार, सपने मिथ्या होते हैं
दिन की चिन्ता आती जब हम सोते हैं

होता कोई यदि मनु पूत ये मग
पर रोग भयंकर, शस्त्र काम कब दग ?
मीराँ का मुख निहारते मीरा माला
सन्ताप, शान्ति से भरा व्यस्त निराला

जीवन की मन में लिये हुए वे आशा
चिन्ता की करते चूर्ण सतत अभिलाषा
छूटता शान्ति का साथ किन्तु जाता था
जलता था दीपक स्नेह रिक्त पाता था

चलता था शान्ति-अशान्ति द्वन्द्व-मथपण
परिजया, मधु स्वर करते अमृत वर्षण
साथ प्रात मीरों गिरधर के सम्मुख
करुणा स्वर में बिखरा देती अपना दुःख

उसका स्वर-लहरी में तन्मयता होती
गायन कहना अन्याय, करुण मन रोती
जीवन मरन का प्रश्न अधिक गहरा था
रण आशा और निराशा में ठहरा था

प्राणों पर काल घटा घिर-घिर आए था
मृतप्राय कला विश्वास न रख पाई था
कितने ही चान्द्रायण व्रत घनी तपस्या
करने का यह संकल्प ले चुका पहला

कुछ क्षण निकाल कर वह सोचा करता था
पत्थर के आगे दृग मीचा करता था
करता था उदर भरण पशु विहग गणों का
देता सविता को अर्घ्य सुनीर कणों का

सम्यक श्रवण में पति-जीवन का आशा
संवेदनाशील पवित्र हृदय की भाषा
उल्का में भी पति हेतु कूद सकता था
प्रति जीवनाथ निज प्राण मूँद सकता था

मृत्युंजय का जप-जाप पठन चलता था
सी पापों का उर पीड़ा से जलता था
ग्रह-शान्ति दान-दक्षिणा आदि से करते
उर टूट चला था अश्रु दृगों से झरते

वीणा के मंजुल स्वर पायल की ध्वनियाँ
थे प्रचुर निराशामय, उन्मन कामिनियाँ
मदिरा के मादक प्याले रिक्त पड़े थे
नीरस हताश कंचन-मधु सिक्त घड़े थे

शोभता नहीं थी नव-युवती-नयनों में
सुन्दर कोलाहल शान्त हुआ भवनों में
हय-गज चलते थे पर न रहा चपलता
ऊँटों का प्रतिपल मत्त हृदय न मचलता

अविराम चतुर्दिक् एक खिन्नता छाई
रोगी के व्याकुल रहे अत्यधिक भाई
उपचार कठिन-से-कठिन नित्य करते थे
सबको नृप सान्त्वना स्वयं देते थे

चिन्ता करते रोगी न कभी निज दुख का
चिन्ता था मीराँ के नव जीवन सुख का
हैम त्रिन कागी म समझ पाते थे
दुस्सह ज्वाला से शान्त न रह जाते थे

कितने ही गायन जो उर छू जाते थे
रुग्णावस्था में भी कुमार गाते थे
कण्ठस्थ हो गई थीं गीतों की कड़ियाँ
जो यथा समय बिखराती मोती लड़ियाँ
जब स्वस्थ रहे तब प्रतिदिन ही सुनते थे
जीवन का करुण प्रपूर्ण नाद सुनते थे
मीराँ भावों में खो जाती बह जाती
सम्मिश्रण द्युत संस्मरण लहर रह जाती

नौका तरती चन्द्रिका शुभ्र अम्बर में
मुख पास किये दोनों निहारते जल में
चंचल लहरों की भाँति उमंगें उठतीं
आलिंगन के मधु-पाशों में आ जुड़तीं

आकर्षित करती दूर क्षितिज की माया
चलदल-वट-कुल की सघन पल्लवित छाया
तट पर चल जल में मातर चरण डुबाये
यौवन के मंजुल मधुर भाव मँडराये

अब भी कुमार गाने को प्रेरित करते
अपनी परिस्थिति का ध्यान नहीं कुछ धरते
मानों गाती आशा के हर्षित गान
पर वे कहते गत क्षण की कथा सुनाने

दुख में संवेदनशील हृदय हो जाता
पीड़ित नर दुख के गायन से सुख पाता
पीड़ित मन पर पड़ता प्रभाव पीड़ा का
सम्बन्ध नहीं कुछ रह जाता क्रीड़ा का

भाता सुख दुख की ग्रन्थि खोल देता है
अन्तर् चिन्तायें अधिक मोल लेता है
दुख के प्रवाह में सब कुछ बह जाता है
दुख में मानव मानव ही रह जाता है

कितने ही जीवन के रहस्य चिरपरिचित
प्रिय कह देते अब भावों में वह कलुषित
कहते थे प्रिय, न जाने कितनी बातें
मन की हैं उन से, न अनृत ये बातें

मानों कहती ये बातें अब आने दें
पीछे कह सकना अवसर तो आने दें
विश्राम करें चिन्ता की बात न होवे
भोलें न अधिक दिन रात प्रात भर सोवें

जो बीत गया सो बीत गया, क्या चिंतन !
तन पर प्रभाव फैलाता उद्वेलित मन
आज क्षण चिन्तन का न आज कुछ अवसर
अब स्वस्थ रहेंगे, सभी सुनूँगी आ कर

बल्लरियों के झुरमुट में दूर्वा दल पर
मंझा के मंजुल तारों में कल स्वर भर
जो संध्या के अंचल में गीत सुनाया
गाओ फिर अतर् नहीं प्रिय ! भर पाया
वाह ! वह मैं तो भूल गई क्या गाया ?
मैं जो कुछ कहता वह न आपको भाया ?
मैं कहती हूँ अब आगे आप न बोलें !
आराम करें मुख नहीं जरा भी खोलें !

क्या कहूँ प्रिय ! मन नहीं मानता मेरा
यह कौन जानता कब उठ जाय डेरा !
आया हूँ तो जी भर गायन तो सुन लूँ
कर रिक्त न रह पायें मैं कुछ तो चुन लूँ !
मुझको अब जीवन का विश्वास नहीं है
आये भी और न आये साँस नहीं है
ऐसी बातें करते हैं यह [illegible] विचारें
होवेंगे सुन्दर स्वस्थ न साहस हारें

मीरां ने उनके मन की बात विचारी
तंत्री का एक अनाम वह सन्नारी
अच्छा सुप्रिय मुस्काती थी, आती थी
पति सुख पायें बस इसीलिए गाती थी

मान कितना हो न ज्ञान
मग्न थीं अंगुलियों में
थे मधुर झंकार करते
भ्रमर अगणित पंक्तियों में

उड़ रहा सौरभ लिये
शीतल पवन था मंद सन् सन्
मुग्ध चितवन हार बजाता
था विपंची झनन् झन् झन्

व्योम में आ-जा रहे थे
गीतिमय हो विहग सारे
मंद मुस्काते सुमन थे
स्वप्न रत से मौन धारे

धूलि धूमिल हँस रहा था
व्योम में भी एक तारा
पर न जाने थे कहाँ तुम !
शून्य मानस खोज हारा
शून्य नयनों ने निहारा

स्वर लहरी का सुन्दर प्रभाव पड़ता था
अमृत का मंजुल तत्त्व मुक्त झड़ता था
बोले प्रिय सुमन भरा चित्र बनाया
मरा होने पर भी मैं देख न पाया

मीराँ बोली, यह तो है अभी अधूरा
दे दूँगी यह जब हो जायगा पूरा
अवकाश न, पूरा मैं न उसे कर पाई
रेखाओं में मैं रंग नहीं भर पाई

हँस कर बोले प्रिय व्यंग्यमयी मधु वाणी
यदि नारी हो तो ऐसी हो कल्याणी
नाचे गाये भी रेखाचित्र बनाये
कविता-समता कोई न कभी कर पाये

प्रिय हँस देते तो भाग्य जाग से जाते
अंतरमन के उल्लास मधुर बन जाते

सतृषित, क्षुधित को अमृत सा मिल जाता
अभिराम उमंगों में उत्सव आ जाता

वह हँसती थी इसलिए कि प्रिय हँस पायें
संस्मरण सुनाती व्यथा भूल वे जायें
गाती थी यों आशा से उर प्लावित हो
तम के विस्तृत अंचल में पंकज सित हो

प्रिय बोले, मुख पर अपलक नयन गड़ाकर
भावों से भाव, नयन से नयन लड़ा कर
पर प्रिये, ज्ञात होता है मुझको ऐसा
यह चित्र रहेगा यों वैसा का वैसा

जिस कलाकार ने मेरा चित्र बनाया
उसका कुछ ऐसी ही विचित्र सी माया
वह मेरा रेखा चित्र मिटाने वाला
रेखा पर फिरने वाला है कर काला

उसका है काम मिटाना और बनाना
वह रेखाचित्र बनाता है मनमाना
बनने पर वह फिर हाथ फेर देता है
बस इसी काम में वह नित रस लेता है

जिसको बनने से पूर्व मिटा देता है
इसका मतलब है स्पष्ट न रस लेता है
वह रेखाचित्र नहीं सुन्दर हो पाया
उसकी सुन्दरता से न हृदय भर पाया

वह पुनः मिटा कर उसको सुन्दर करता
रेखा में गहरा रंग निरन्तर भरता
तब तक वह यों अविरल करता रहता है
जब तक सुन्दरता से न हृदय भरता है

यों नित्य न जाने कितने चित्र बनाता
कितनों पर ही वह हाथ फेरता जाता

उसकी तूलिका निरन्तर चलती रहती
नित नव्य कल्पना नव भावों में बहती
उसको न हर्ष है, और नहीं पीड़ा है
उसका तो अपनी यह केवल क्रीड़ा है
उसका कोई भी चित्र नहीं है प्यारा
कोई भी चित्र नहीं है उससे न्यारा
कोई भी ऐसा चित्र नहीं बन पाया
जिसने उस कलाकार को जानी माया
यह क्यों करता यों ? यह तो वह ही जाने
वह जान बूझ कर करता, या अनजाने
चित्रों में जितना रंग प्राण भरता है
बस उतना ही वह आकर्षित करता है
इसके पीछे कुछ नहीं मूल्य रह जाता
वह रेखाचित्र नहीं सुन्दर रह पाता

कितने हो रंग बिरंगे चित्र निराले
कितने ही केवल हो जाते हैं काले
कितनों की भाव भंगिमा मोठी होती
आभा के भाग नीरस लगते मोती
रेखा चित्रों से पृथक् नहीं निर्माता
निर्माता का सबसे समान ही नाता
बसते हैं वे सब निर्माता के मन में
निर्माता अंकित चित्रों के कण-कण में

उसके किंचित् इंगित में नाश समाया
ईषत् इंगित में निर्माणों की काया
वह कर्ता हर्ता, भर्ता भाग्य-विधाता
स्रष्टा प्रलयंकर शंकर वह ही त्राता
उसकी अंगुलियों में अमृत की माया
जिसको भी छूता अंगुलियों की छाया

यह प्राणवान् गतिशील दिव्य ज्योतिमय
यह दिव्य चित्र, उसको न विसभरता मय

चाहा तुमने भी ऐसा चित्र बनाना
हो कलाकार सुन्दर तुम भी, यह माना
उस कलाकार की किन्तु सृष्टि न्यारी है
उसकी समक्षता बिना कला हारी है
जगती में जितने कलाकार मतवाले
उनमें उसके ही अंग ज्वलन्त निराले
वे भी प्रतिपल निर्माण नाश करते हैं
क्या मना बिगाड़ा नहीं ध्यान धरते हैं
उसकी इच्छा ऐसी कि मैं न रह पाऊँ
साम्य होम उसको कब तक मैं भाऊँ ?
तुम में उसका कुछ हृदय नहीं भर पाया
इसलिए तुम्हारा चित्र नहीं बन पाया
आश्रम चकित थी नहीं ज्ञान कुछ पाई
उनकी बातें कुछ-कुछ नहीं कुछ भाई
फिर भी बातों में सत्य, सत्य लगता था
काली छाया सी आँखों में जगती थी

यह सोच रहा था यह दर्शन की धारा
यह निकली कैसे सरस स्वरूप कर कारा ?
दर्शन की धारा का प्रवाह था सारा
पर उसने धीरज धारण करना सीखा

यह ज्वर-प्रलाप या अशुभ मृत्यु-संदर्शन ?
तापसी शान्ति का शान्त हुआ संघर्षण ?
यह कलामयी वाणी ईश्वर प्रेरित है ?
या भावों में छाया तम-तोम असित है ?

यह, भय विह्वल होगई, कंठ कुम्हलाये
यह समझ रही थी नहीं कि क्या कह आये ?

लड़खड़ा पड़ा स्वर, बाला क्या कहते हैं!
रस हीन कल्पना में निष्फल बहते हैं

यह प्रचुर निराशा इतनी ठीक नहीं है
जीवन की इतनी पतली लीक नहीं है
होगा न बाल भी बाँका, मैं कहता हूँ
एस भावों में मैं न कभी बहता हूँ

जीवन के पथ में रोग, दोष आते हैं
अपना विषमय दुष्प्रभाव दिखलाते हैं
पर थोड़े दिन में ऐसे क्षण भी आते
जिनके प्रवाह में रोग, कष्ट बह जाते

उनके आने पर जीवन लहराता है
नूतन उमंग से पथ पर बढ़ पाता है
कंटक-कुल पर चलना जीवन की भाषा
वह जीवन क्या जिसमें न कहीं कुछ बाधा?

ऊँचे पर्वत पर चढ़ने में दुख लगता
पर नाथ भाल में कितना सुख जगता?
घाटियाँ पथ का जीवन सरल बनातीं
काली कादम्बिनियाँ अमृत बरसातीं

तम के विस्तृत अंचल [illegible] दीप मचलता
भीषण पथ पर विद्युत् का नर्तन चलता
निर्जन भयावने दर में चट्टानों के
शत शत निर्झर बहते हैं मधु-गानों के

मुझको गहरा विश्वास सदा जीवन का
कर सके न विचलित उसे कष्ट कुछ मन का
पीड़ा-कष्टों के क्षण सब बाँट गए हैं
कर रह प्रतीक्षा अब क्षण सुन्दर मद हैं

यह भाँति भाँति के सुन्दर वचन सुनाती
जीवन में मंगल आशा मधुर जगाती

कुत्सित भ्रम की कालिमा सतत धाती थी
पति सुनते, वह भी ध्यानमग्न होती थी

सम्मोहित थे वे उसके भोलेपन पर
काली छाया थी उनके कुंठित मन पर
उसकी विद्वत्ता से थे आकर्षित थे
वाग्मिता मधुर भाषण में अति हर्षित थे

हँसते थे वे या आशा का उपक्रम भी
जग जाता अंतर् में प्रकाश, पर भ्रम भी
वे क्षुब्ध लहरियों पर नौका से बहते
खोये खोये से, शान्ति हीन से रहते

वे कलाकार थे कला उन्हें भाई थी
जीवन-नौका के अनुकूल हवा आई थी
आह्लाद छा गया प्राण मुक्त हँसते थे
संगीत नृत्य, कविता घर घर बसते थे

अभिराम कला प्रतिपल विकास करती थी
जन जन की आशा नव उड़ान भरती थी
पर, दुःसमय आ गया अचानक झोंका
युवराज दग्ध, जीवन की उलझी नौका

क्षण पर क्षण, दिन पर दिन चढ़ते आते थे
नूतन दिन, क्षण प्राचीन बन जाते थे
जग भूला था अपने दुख सुख में सीमित
पर मीराँ के उर में दुख हो दुख अंकित

वह समझाती इस तन का कष्ट घटेगा
यह पीड़ा का दुखपूर्ण वितान हटेगा
वे हँसते कहते तुम न समझ पाओगी
कुत्सित समाज बलवान् झुकी जाओगी

कह भी देते वे कभी-कभी ये बातें
ये दिन न रहेंगे, नहीं रहेंगी रातें

मैं भी न रहूँगा, कैसे रह पाओगी !
उखड़ी लतिका की ज्यों कुम्हला जाओगी

वह दुख पाता सुन-सुन कर ऐसी बातें
उसको प्रेम व प्रश्न नहीं कुछ भाते
कहता ऐसी बातें हैं पागलपन की
पर व्यथा भयंकर होती उसके मन की

वे बार-बार कहते वीणा तो लाओ !
अन्तर अशान्त हो ऐसा गायन गाओ !
फिर स्वयं गूँजता उनका स्वर धीमा सा
धूमरित, विकल, चुपचाप मृत्यु-सीमा सा

आज यह अंतिम मिलन है
वेदना के गान तुमने
हो व्यथित मुझको सुनाये
सित कपोलों पर गरम से
अश्रु-कण दो ढुलक आये
हृदय को अविरल जलाता
विरह का भीषण अगन है
आज यह अंतिम मिलन है

आज प्लावित हृदय में था
हाय कितना हा न जाने
कल्पना के पंख फैला
थे उड़े कातर बनाने

घन निराशा के हृदय में
छा रहा विद्युद्-गहन है
आज यह अंतिम मिलन है

मापता मनुज कुछ और और होता है
जीवन का क्रम अम्बर का सा गोता है

आशायें स्वर्णिल जाल बुना करती हैं
जगती के सुन्दर तत्त्व चुना करती हैं
प्रत्येक मनुज की चाह मिले चिर-जीवन
वैसी आशायें मूर्त रहें जैसा मन
बन्धन न रहे, तन, अंग, धन सब इच्छित हों
सर्वस्व चिरन्तन अमृत से सिंचित हो

पर सूत्रधार कोई ही है मानव का
है क्षुद्र जीव मानव तो विस्तृत भव का
वह जैसे रखता सूत्र नाचता वैसे
जानें बात कितने [illegible] युग-युग ऐसे ?

इस भू पर मानव खेल खेलने आता
नश्वर जग में क्रीड़ा अपनी कर जाता
तब तक चलता है दीपक सा जलता है
फिर सहसा उसको अन्धकार मलता है

जीवन के पथ का कुछ विश्वास नहीं है
जीवन के रथ का सहसा मार्ग सही है
काली कराल छाया के अंत्र क्षण आते
कर दृढ़ निश्चय अंत, लौट कब पाते ?

सब परिजन रहे हताश पिता माँ भाई
हो गये कुँवर निर्जीव मृत्यु जब आई
टूटा साँसों का तार क्षीण जो अटका
मीराँ चिल्लाई, सिर धरती पर पटका



दशम सर्ग



खग-बाला कलरव वीणा
में विरह राग जब गाती
पलक-कलिका की आँखें
खग बाला पर जम जातीं

उर-कसक लिए तब अपना
गिर तरु सम्मान हिलाते
घिर व्यथा-व्यथित चल मधुकर
तब भावों में खो जाते

चल पवन सनन् सन् वशा
में आतुर हो तब गाता
भावुक अभिराम सुमन-दल
अभिनव सुपराग लुटाता

नीरव प्रशान्त सर-उर में
सोई स्मृतियाँ जग जातीं
उर वेध-बध अविरल हो
फिर आर पार हो जातीं

कम्पित चित्रित सा, कुक्कुट
तब थाह-थाह कह उठता
तब दारुण मौन व्यथा से
उसका उर भी गा उठता
प्रिय मिलन बस चाह मेरी

कल्पना के व्योम में खग
बन निरंतर उड़ रही, पर
वक्ष पर पड़ अश्रु-लड़ियाँ
शमन करतीं दाह मेरी

हृदय धारा में चपल
उल्लास-जलगा पैरती
गंभीरता रूपी निराशा
से न मिलती थाह मेरी

आश हय को मैं सदा
सरपट भगाता आ रहा, पर
हृदय से अनाल कोई
रोक लेता राह मेरी

हास के उद्यान में अभि
राम अंकुर फूटने पर
पल्लवों के पत्र ही तो
भस्म करती आह मेरी

(२)

कौन किसके पास, रे कह !
भावना भर-भर तृणों में
विहग ने कोटर बनाया
उड़ रहा अनजान हो अब
छोड़ निज आयाम रे कह !

सुरभि से अठखेलियाँ कर
हो गया गद्‌गद् पवन था
डंठलों से उर लगा अब
ले रहा निश्वास रे वह!

प्रेम की दीपावली में
हँस पड़ा नव यामिनी थी
शून्य में कुछ ढूँढ़ता सा
मौन जब आकाश रे वह!

(३)

फिर विदा की दुखद वेला

विवशता से कोटरों में
विहग-कुल निःशब्द सारे
म्लान मन, चित्रित किये से
तरु-पटल स्थिर स्तब्ध हारे

मौन सुध-बुध शून्य मधुकर
पुंज चल उद्विग्न प्रतिपल
शून्य नभ में ताकता सा
वल्लरी-दल श्रान्त निश्चल

श्रान्त निर्मल कल सरित् का
विरह से आया हृदय भर
मुख छिपाये अंचलों में
मुकुल बेसुध डंठलों पर

यामिनी भर भर सिसकियाँ
जा रही होती व्यथित ही
मग्नो का त्रस्त मानस
हो रहा था तम-मथित ही

शून्य में ही टिमटिमाता
सोम था नभ में अकेला

(४)

दुख विहग का हो पुरातन
नीड़ है यह हृदय मेरा
धारा से ही कुछ सदा घिर
व्यथा की चिनगारियों में
साथ जब ज्वाला उठाता
साँस का भीषण प्रभंजन
जब मधुर जीवन स्मरण
सौदामिनी की लोमहर्षक
कड़कड़ाहट में निरन्तर
बरसते रहते नयन घन
तब कहाँ से यह न जाने
मौन आ करता बसेरा ?
नव उषा की मधुमयी—
मुस्कान से जग कुसुम-दल पर
अलि पटल अति मुस्कराते
हो निरंतर प्रेम विह्वल
चल सरित चल लहर—
प्रतिबिम्बित बिम्ब से भर उड़ानें
सुन्दर कलरव में रिझाते
व्योम श्री को विहग चंचल
पर न जाने इस हृदय में
क्यों नहीं होता सबेरा ?

(२)

शून्य में अनजान ही यह
शुष्क पत्ती उड़ चली है

प्रात को हँसते न पाया
स्वप्न के उद्यान में भी
हो न पाया नीड़ अब तक
श्वासों के तृण वितान में भी
पर प्रखरतम ग्रीष्म लूओं
में सदा अब तक पला है

सुन न पाई विहग बाला
के नवल मधु गान बिखरे
देख पाई कुछ न माधव—
चन्द्रिका मुस्कान भी रे !
पर गहन तम – जलद छाया
से गई अब तक छला है

(६)

शेष क्या परिचय रहा अब ?
सिसकियाँ भर भर करुणा
दुखद जीवन की सुनाई
कंठ घर् घर् कर रहे दुख—
तप्त श्वासें दयद्रवाह
हृदय भी था रो उठा तब

उड़ चले फिर हम क्षितिज को
लाँघने उल्लास लेकर
विरह पीड़ा व्यथित विटपी
को अनेकों आशा देकर
विटप भी था रो रहा तब

सिर भिड़ा पवमान से—
नियल चरण थे लड़खड़ाये
फिर प्रतीक्षा में तुम्हारी

प्रियतम कितने ही बिताये
क्रूर चरणों तले दब दबा

(७)

पद दलित पत्तों की मर्मर में
शिशु हीन शिशा का करुण रुदन
पतझड़ विटपी का सूनापन
में नीरव मम की व्यथा मान

शापित भू की नीरस कणिका
मुरझाये फूलों की सिसकी
मान-वंचित कलि की करुण आह
आतुर पतंग का हृदय मौन

व्याकुल सरिता का तट हताश
प्यासे चातक का आर्त राग
उमड़ी बदली के आँसू-कण
विरही जीवन की हूक मान
मुझसे मत पूछो, मधुप कौन ?

(८)

अलि मम उर की शुष्क मुकुल पर
भी आओ मँडराओ
सूनी अति नीरस पँखुड़ी है
इसमें मनहर मकरंद नहीं
मय चितवन नूतन रंग मधुर
उड़ता पराग स्वच्छन्द नहीं
अपने हृदय उर का फिर भी
आओ कह सुन जाओ !
उर की आशा उर में ही ले
खिलने से पहले सूख गई

स्मृतियाँ अब भी कुछ रेखा-सी
उर में अंकित हैं कई कह
पहले की ज्यों फिर खिल पाये
ऐसी तान सुनाओ !

(६)

सखि ! सूख चुका सब कुछ मेरा
बस आँखें ही केवल जलमय

टूटे उर-वीणा तारों में
जीवन के मधु आधारों में
मानस द्रावी झंकारों में
बजती बस केवल करुणा लय

उल्लासों की भी बात नहीं
आशा से पुलकित गात नहीं
सुख की रिमझिम बरसात नहीं
होता बस केवल क्षय पर क्षय

सुख की बदली भी चली गई
आशा-वीणा भी टूट गई
कसकें अब उठतीं नई नई
उर तड़प-तड़प करता अभिनय

मिट गई हास की हरियाली
बुझ गई रास की दीवाली
घनघोर घटा दुख की काली
है बरस रही कर मच रहा प्रलय

जीवन की स्मृतियाँ उर में भर
झर झर झर झर झर झर झर झर
बह रहा प्रबल पीड़ा — निर्झर
आवर्तों में अन्तर तल क्षय

(१०)

सुखमय जीवन में पले हुए
जानो क्या पर पीड़ा मधुकर ?

जीवन में आया कभी नहीं
जी भर कर हँसने का अवसर
बहते रहते हैं दृग झर झर
जानो क्या उस जलधर का उर ?

जीवन में जिसने कभी नहीं
सुख की छाई देखी बदली
नीरस हताश उस पत्ते का
जानो क्या करुणामय मर्मर ?

झंझा के भीषण झोंका से
सुखमय उड़ गया नवल कोटर
वेदना शून्य उस नव खग का
जानो क्या पीड़ा-पीड़ित-स्वर ?

(११)

मेरे उर का शुष्क मुकुल सा
कहो मधुप ! क्या कभी खिलेगा ?

पल-पल प्रतिपल सौरभमय कर
शतदल के गहन विपिन का
अन्तर्धान हुई जो सहसा
आच्छादित कर व्यथा-मलिन को

कहो न खोई हुई सुरभि वह
मुझको क्या फिर कभी मिलेगा ?

मत्त गिरा से नव जलधर के
रिमझिम रिमझिम लयाभिनय में

विहगों के मनहर कलरव में
मद-मद मलयानिल से रे!
पुष्प भाँति क्या कभी हिलेगी ?

(१२)

मेरे जीवन का सूनापन
उर चीर चीर खा जाता है
नीरव नयनों में जल-कण बन
जीवन सम्मृतियाँ स्मरण करा
कर देता है दूभर जीवन

उर में अचीरल चुभता रहता
तीखा तीखा कंटक सा बन
मानस अम्बर में छा जाता
घनघोर घटाएँ दुख की बन

अन्तर् विदीर्ण कर धर देता
कोमल मम मन पर व्यथा गहन
भयदायक प्रलय-बाढ़ सा बन
कर देता अति ही नीरस मन

(१३)

बुदबुदों को कान आने ?
म्लान, चमक-हीन नीरव
ताप-बेसुध लहरों पर
भूल कर आ विहग कोई
खा न पाता चहचहान

पद-दलित नित करुण नीरस
मुरझा-यौवन सुमन दल पर

नृत्य-तन्मय भ्रमर कोई
था न पाता गीत गाने

जीर्ण पर्ण विहीन गत-रस
शून्य कण्टकमय विटप पर
मृदुल तिनके ला न पाती
गिलहरी कोटर बनाने

(१४)

पतझड़ शिल्पी पीड़ा से
दुखिया बदली रो देती
तापित भू भी आँसू से
अपना अंचल भर लेती

अविरल चीत्कार मचाता
दुख से बेसुध हो दादुर
[illegible] घटे रहते
हो मौन विहग शोकातुर

सिसकी भर भर विपदा में
[illegible] पवन टकराता
चातक दारुण पीड़ा में
अविरल ही रुदन मचाता

रह रह कर विपदी बेसुध
सिर धुनते मानव व्यथा में
नीरव पीड़ित हो पड़ते
अचला पर मूक व्यथा में

निःश्वासों से पतझड़ तरु
रो रो कर उठता [illegible]
उसके भी चलते रहते
नयनों से जल-कण झर् झर्

शान्ति के आधार मंगल
जा रहे हैं दूर पद-चाप

(१७)

विटप से मुस्कान भर फिर
झुक गई नीरस लता भी
वायु में अनुराग का भर
गा उठी फिर कोकिला भी

विधु सुखद कर मयूखों में
हँस उठा फिर यामिनी भी
नील नभ से आ मिला फिर
थिरकती सौदामिनी भी

प्रेम विह्वल हो उमग प्रिय
पा सरित् अभिसारिका-सी
रमा भी घनलय हुई फिर
नृत्य-तन्मय गायिका सी

नवल सौरभ चल पड़ा
उन्मत्त सी फिर पवन संग-संग
छोड़ अवगुंठन मिली फिर
मुकुल भी मकरंद-पी संग

पुलक चहकी खग-कुमारी
विहग से अठखेलियाँ कर
हँस उठा तट से लहर मिल
प्रबल सुख से नयन भर भर

हाय पर हृदयेश मेरे
कब मिलेंगे कौन जाने?
स्मरण पर दिन बिताने

(१८)

नव-नव छविमय शतदल शतदल
अविरल हँस हँस कर तरल सरल
झिलमिल खिलखिल कर नवल-नवल
कलि कुल भी मुझे खिला न सके

जगमग जगमग जगमग जल जल
नीरव तममय उर में अविरल
अगणित, असीम पल-पल प्रतिपल
तारे भी ज्योति जगा न सके

मादक-मादक उर हर मधु स्वर
में बेसुध अविरल गा गा कर
प्यार प्यारे नववय मधु कर
टूटा उर-वीणा बजा न सके

प्रियतर सुखकर मधुमय शैशव
में पले हुए नव नव अभिनव
मनहर मनहर कर कर कलरव
नश्वर भी मुझे हँसा न सके

(१९)

भूला कलियों नभ में उड़-उड़
कहता जग से मत प्यार करो!

आशा के स्वर्णिम सपनों की
डाली पर ही मधु-गान मग्न
मग पालाओ! मत नीड़ रचो
नभ में ही पर प्रसार करो!

अपनी अभिलाषाओं को तुम
अवगुण्ठन में ही छिपी रहो!

भोला मन उर ले अलि-गण से
कलियो ! भौंरें मत प्यार करो !

वृक्षों की शीतल छाया में
ही बैठ खगों के गान सुनो !
मन वीचि-चाव से डग पर डग
भर सरिते, मत अभिसार करो !

नीरव निशीथ में शतदल पर
ही बैठ आत्म चिन्तन-लय हो
भावों में बेसुध हो रजनी !
तारों से मत शृंगार करो !

(२०)

उर पतझड़ छिपी के नीचे
करुण विरह संध्या बेला में
मृदु तार जीवन वीणा पर
एक बात भी कह जाते तो

स्मृतियों की झिलमिल झिलमिल
क्षीण ज्योति का आलम्बन ले
नयनों की निश्चल सरिता में
एक बार आ बह जाते तो

नीरस वैभव हीन पर्ण पथ
से मर्मर चल पग ध्वनि से आ
तम-मय सूने उर कुसुम में
एक रात भी रह जाते तो

(२१)

पर अभी तक ये न आये
सांझ्या से श्याम थी भी

चल पड़ी अनजान ही में
फेंक कर गल हार मोती
सब, निराशा ध्यान ही में
डग निशा ने भी बढ़ाये

ताकती ही नभ उषा भी
चल पड़ी, खग भर उड़ानें
शून्य में ही बढ़े अविरल
भ्रमर कितने ही न जाने
कब से आ गुनगुनाये

आह भर संध्या गई—
कुम्हला मुँदे पंकज नयन भर
जल उठे दीपक निराशा
के विटप की डालियों पर
विहग फिर आ चहचहाये

(२२)

डंठल पर रो उगी कोकिला
दुखी वृद्ध सा थर्थर थथर
काँप काँप डंठल हो नत सिर
अपनी दुखमय हीन दशा का
अनुमोदन कर उठा सिर हिला
बिलख बिलख कर व्यथा-कहानी
मधु हृदय में लिये लिये ही
बेसुध हो गिर पड़ा भूमि पर
सहसा नीरव फूल अधखिला
नीरस वृथा प्रतसियाँ पत्तों की
हीन दशा से स्मृतियाँ जागीं
बोल उठा अन्तर से कोई
रे इस जग में किसे सुख मिला ?

भोला मत उर ले अलि-गण से
कलियो ! आँखें मत चार करो !

वृक्षों की शीतल छाया में
ही बैठ खगों के गान सुनो !
मत वीचि-पाथ से डग पर डग
भर सरिते, मत अभिसार करो !

नीरव निशीथ में शतदल पर
हो बैठ आत्म चिन्तन-रत हो
भावों में बेसुध हो रजनी !
तारों से मत शृंगार करो !

(२०)

उर पतझड़ विटपी के नीचे
करुणा विरह सन्ध्या बेला में
भग्न तार जीवन वीणा पर
एक बात भी कह जाते तो

स्मृतियों की झिलमिल झिलमिल
क्षीण ज्योति का आलम्बन ले
नयनों की निर्झर सरिता में
एक बार भी बह जाते तो

नीरस वैभव हीन पर्ण पथ
से मर्मर चल पग-ध्वनि से आ
तम-मय सूने उर मधुवन में
एक रात भी रह जाते तो

(२१)

पर अभी तक य न आये
सान्ध्य ल व्योम आ भी

चल पड़ी अनजान ही में
फेंक कर गल हार मोती
सब, निराशा ध्यान ही में
दृग निशा ने भी बहाये

ताकती ही नभ उषा भी
चल पड़ी, खग भर उड़ानें
शून्य में हो बढ़े अविरल
भ्रमर कितने ही न जाने
कन में आ गुनगुनाये

आह भर सन्ध्या गई—
कुम्हला मुँदे पंकज नयन भर
जल उठे दीपक निराशा
के विटप की डालियों पर
विहग फिर आ चहचहाये

(२२)

डंठल पर रो उठी कोकिला
दुःखी वृद्ध सा थर्थर थथर
काँप काँप डंठल हो नत सिर
अपना दुखमय, हीन दशा का
अनुमोदन कर उठा सिर हिला
बिलख बिलख कर व्यथा-कहानी
दग्ध हृदय में लिये लिये ही
अबुध हो गिर पड़ा भूमि पर
सहसा नीरव शून्य अध खिला
सौरभ शून्य पत्तियाँ, पर्णों की
हीन दशा से स्मृतियाँ जागीं
बाल उठा अन्तर् से कोई
रे इस जग में किसे सुख मिला !

(२३)

छोटा घर नहीं बनाऊँगी
डाली टूटी, पत्ते बिखरे
साथी भी छूट गये सब रे
उर में टूटा अभिलाष लिये
अम्बर में ही घुल जाऊँगी

उर-मौन व्यथा से आँसू भर
जब मुझे निहारेगा अम्बर
मेरा अपना परिचय मैं भी
आँसू में ही बह जाऊँगा

गा-गा कर निशिदिन आत्म-गान
निर्जन नभ पथ पर कर प्रयाण
जग-बंधन-स्तर से ऊँची उड़
मैं शून्य-लीन हो जाऊँगी

(२४)

वह जान सके क्या सुख को ?
कमल चरणों के नीचे
दुख-स्थल दारुण पीड़ा सह
जीवन में जिसने उसका
भीषण-दुख उसका सुख का

जीवन में अविरल रो रो
कर करुणा-अश्रु बहाय
दृग जिसने परित हो
बस केवल दुख ही दुख का

खा-खा कर नीम — निमोली
तोड़े जीवन के दुर्दिन

जीवन में जो प्रतिपल हो
मधु-आम्र-सुस्वाद विमुख हो

(२५)

एक बार भी आ जाते तो
जीर्ण जीर्ण कुछ पखुड़ियों में
जीवन का अस्तित्व छिपाये
विटपों की गहरी छाया में
सोये सुमन जगा जाते तो

तन्तु वितानों में अपने ही
उलझी सिकुड़ी बँधी निरन्तर
तरु आश्रित ही लतिका की
पर-वशता दूर भगा जाते तो

भीषण झंझा से पल प्रतिपल
इधर उधर उड़ रहे व्योम में
सशोपिम नीरस-जीवन पत्तों
को पार लगा जाते तो

(२६)

कब न जाने प्रात होगा ?
रिक्त सरिता में न जाने
कब खिला जलजात होगा ?

तृण-पल्लव से ढकी अविरल
शूल-प्रस्तर-राम-मया इन
कन्दराओं का न जाने
कब हृदय अवदात होगा ?

साँय पवन-स्वन निशिदिन
दूर तक वन विजन में भी

(२३)

आदर अब नहीं बनाऊँगी
डाली टूटी पत्ते बिखरे
साथी भी छूट गये सब रे
उर में टूटा अभिलाष लिये
पथर में ही बह पाऊँगी

उर-मौन व्यथा से आँसू भर
अब मुझे निहारेगा अवर
मेरा अपना परिचय मैं भी
आँसू में हो बह जाऊँगी

गा-गा कर निशिदिन आत्म-गान
निर्जन नभ पथ पर कर प्रयाण
जग-पवन-स्तर से ऊँची उड़
मैं शून्य-लीन हो जाऊँगी

(२४)

यह जान सके क्या सुख का !
ककरा छाया के नीचे
दव-दव दारुण पीड़ा सह
जीवन में जिसने देखा
भीषण-दुख उल्का सुख का

जीवन में अविरल रो रो
कर करुणा-अश्रु बहाय
देखा जिसने परित हो
बस केवल दुख ही सुख का

खा-खा कर नीम – निमोली
तोड़े जीवन के दुर्दिन

जीवन में जो प्रतिपल हो
मधु-आम्र-सुस्वाद-विमुग्ध हो

(२५)

एक बार भी आ जाते तो
पीले पीले कुछ पखुड़ियों में
जीवन का अस्तित्व छिपाये
विम्बों की गहरी छाया में
सोये सुमन जगा जाते तो

किन्तु वितानों में अपने ही
उलझी सिकुड़ी बँधी निरन्तर
तरु-आश्रित ही लतिका सा
परवशता दूर भगा जाते तो

भीषण झंझा से पल प्रतिपल
इधर उधर उड़ रहे व्योम में
संतापित नीरस जीवन पथों
को पार लगा जाते तो

(२६)

कब न जाने प्रात होगा!
रिक्त सरिता में न जाने
कब खिला जलजात होगा!

तृण-पुञ्ज से दबी अविरल
शूल-प्रस्तर-तम-भरी इन
कन्दराओं का न जाने
कब हृदय अवदात होगा!

लाँघ पर्वत-शृङ्ग निशिदिन
दूर तक घन विजन में भी

सुरभि-सुरभित कब न जाने
यह द्विगत प्रभात होगा ?

(२७)

वह क्या जाने वंशी-रव को ?
विटपों की सघन शिखा से ही
देखा जिसने उजड़े पथ को

जीवन की धुँधली सन्ध्या में
भी निज सौरभ द दे अविरल
प्रतिपल ककश हिम-कण-कण का
आघात सह जो नीरव हो

पत्ते—लतिका—किसलय—विहीन
जिस विटपी की शाखाओं पर
जीवन के प्राणों से लेकर
अब तक न हुआ खग कलरव हो

(२८)

पादित का आह कौन सुने ?
अलि-गण भी सारे रूठ गये
सहवास तथा सौरभ ने भी
पत्तियां साथ हा मिट्टी में
मिल गये मधुर सुख सपने भी
अति गत-वभव भारत नीरस
उस सुमनों की कौन सुने ?

किसलय—दल साथ-साथ सूखा
स्वर्णिम हरियाली जीवन का
पवन झकों की ठोकर से
मन में ही धार रहा मन की.

घूमे कर्कश पिंजर छितरे
तिनकों से कोटर कौन चुन ?

(२९)

चलो चलें उस पार विहगम
चलो चलें उस पार !
लतिका कोई विहग प्रशंसित
यौवन पर मद-माता है रे !
कोई मन में आग छिपाये
करता हाहाकार विहगम !
फूल कहीं यौवन में फूला
अलिना से मुस्काता है रे !
कहीं विरह से बेसुध कोई
रोता बारबार विहगम !
पड़ कहीं किसलय से उभरा
हँस हँस नभ में इठलाता रे
कोई उर अभिलाष छिपाये
होता सत्याहार विहगम !
मद मधुकर पर कलिका कोई
यौवन न्योछावर करता रे !
कोई मचक मचक करता—
काँटे काँटे से प्यार विहगम !

(३०)

ऊषा की अँगड़ाई में
अंबर बाला मुस्काती
अलि छेड़ छाड़ से पंकज
की कलिका मौन लजाती
जब चिरक-चिरक प्रिय-स्वर में
राग बाला विहग लगाती

स्मृतियाँ विद्युत् रेखा सी
तव उर पट पर खिंच जातीं

चिर विकल विटप नव लता
निःश्वासों पर निःश्वासें
उनको मिल जाती तापित
निःश्वासों में निःश्वासें

निःश्वासों का लूओं से
उर के किसलय कुम्हलाते
अविरल झर झर जल धारा
तव नयन-जलद बरसाते

(२१)

मत कलियो ! अभिमान करो
दो दिन के ही यौवन का
कुछ पाकर इतरा जाना
क्या ध्येय यही जीवन का ?

मत अलियो ! गुण गान करो
दो दिन के ही यौवन का
नित स्वाभिमान खोना ही
क्या ध्येय रहा जीवन का ?

ठुकराये जाते नित पर
गुण गान यही यौवन का
अपमान कराना ही बस
क्या ध्येय रहा जीवन का ?

(२२)

कोई पर-उर का क्यों जाने ?
गान-चैमय मारम कलिका को
गुंजित मधुकर क्यों पहचाने ?

शुचि सरल, सजल सुरभित अभिनव
सुमनों का नोच नोच मधु पी
पखुड़ियाँ अस्त व्यस्त होने
पर काट लगे क्यों पछताने ?
नभ में विकसित अभिलाषा-मय
प्रतिपल मय किसलय से हँसमुख
उन जीर्ण-जीर्ण पर्णों को मन की
विटप लगा क्यों पतलाने ?

(१३)

रे मन ऐसे सुमन चयन कर !
विहग-टोलियों में हिल मिल हँस
रिमझिम रिमझिम के ससक पर
चपला का मनहर नर्तन भी
देखा जिनने नहीं नयन भर
कर्कश कंकड़ की ठोकर से
त्राहि-त्राहि कर कर शूलों से
जीवन की नित व्यथा-कहानी
कहते हैं जो विजन अयन पर
रह रह रह रह पल पल प्रतिपल
सूने उर में निनद घन यह
उठता है अभिलाषा करुण
कब सायँन महाशयन पर

(१४)

कहाँ मधुर मधु गान यहाँ प्रिय !
निबल यिटपों का उत्साह
नीरव निर्जन पथ पर पल प्रतिपल
अबला कलिकाओं का करना
निरस्कार अपमान यहाँ प्रिय !

सरल सुमन-दल नाच नीच
मकरंद नोप अतिनिध कीट-कुए
अपन गहित-तम जीवन पर
करता है अभिमान यहाँ प्रिय !

सदा दूर अति दूर विजन में
सुख वकरा दम्पए-दल क
हा दोनों पर हा लुटता
रहता खग का मधु-गान यहाँ प्रिय ?

विटपों की शाखाओं पर
निर्मित नीड़ों में पृथक्-पृथक् हो
कैसे कलरव-रत विहगों का
ऊँच नीच का ज्ञान यहाँ प्रिय !

(३५)

प्रिय, धैर्य धरूँ अब कितने दिन ?
न नानों का हा लाम लिए
उड़ रहे व्योम में विहग-वृन्द
गिर रहा निरंतर निठुर पर्णों
पर हा प्रतिपल तरल तुहिन
किसलय वल्लरियाँ विटपों क
आँखों आग हा सूख रहा
जीवन क प्रत्यूषों में भी
हा रहे निरन्तर ताप मलिन

भैसा म उजड़ पाथों का
पथ में एकाकी हा परवश
अभिलाषा डोलियाँ सतत मृत्यु
हा निरख रहा है दिन गिन गिन

विटपों की शाखा शाखा पर
जजर शापित तापित, नीरस

गिलहरियाँ घूम रहीं कितनी
हो सदा म आन कोटर विम

(३९)

रजनी का झिलमिल झिलमिल
साड़ी के अवगुण्ठन को
रजनी-पति चुपके चुपके
खोल जब पुलकित मन हो
जब मुदित कुमुद कलाएँ
उठ जातीं अंगड़ाई ले
जब बार-बार मँडराते
मधुकर गुंजन वाणी से
चुपचाप थकित सी लतिका
सुखमयी भाव ले मन में
पुलकित हो जब बँध जाती
विटपी के आलिंगन में
जब चकित मृगी सी नारी
दृग-बालाएँ अलबेली
लज्जा से नत मस्तक हो
देखें विधु की अठखेली
जब शीतल कर-किरणों में
हँस सुना प्रिया बातों का
उर-सुमन मसल तब सहसा
आ जाता याद किसी का

(४०)

निकला श्रम विश्राम
अन्दर आंख का तिमिर चीर के
भाग से मुस्कान

हेरा श्याम के शून्य हृदय में
तारे फिर अनजान
तरु में था चुपचाप पवन
निर्जनता थी अविराम
विहगों के कलरव में करती
थी लतिका विश्राम

मैं धरती में गड़ी जा रही
थी लज्जित चुपचाप
उनने मेरी ओर निहारा
कर यह प्रेमालाप
आँख मिचौनी खेलें सखि !
आया है मधु-मास

मन औरों मूँदें अपना
छिपे कहीं वे मान
मन भी झटपट हुआ लाल
भरा पूरित मान

पगली थी नारथना केवल
मतति हिला मन एक
यहीं छिपे हैं सोच हृदय ने
किये विचार अनेक

मधु-बन के उस नव निकुंज में
रूप-छटा थी घोर
हरे भरे सुरभित फूलों पर
कलिका चारों ओर

पग पग, कण-कण में ढूँढा
फिर भी हुई हताश

दूर गया हो मूल चले ये
कलि किसलय अभिराम

सुमन, पराग, सुरभि, लतिकाए
विटपी नवल ललाम
नीड़ों में रग वास नहीं था
मादकता था मूक
मथर गति से गई वहाँ मा
लिय निराशा हूक

घूम रहा था मधु वन नयनों
क आग अविराम
सोच रहा था यहाँ कान्त क
चिंतन का क्या काम !

पर, वे शुष्क स्तवक सुनते थे
छाया था उल्लास
निकला भ्रम विश्वास

(१८)

सरिता शान्त किनार
शान्त, मनोहर विमल इदु में
अनुरक्ता थी वामा
अलि स हिला मिली था
कैरव का कलिका अभिरामा

सौरभ में सामा था निमग्न
मंद पवन चल, शातन
फूलों का हृदु बाँहों में था
सरिता का अवसाद

उनकी मधुर प्रतीक्षा स
मन आना उर में प्यारे
हरा दूब पर बैठा था मैं
जल में पैर पसार

जलधर सुधा विवर्द्धित जल में
करत थे अठखेली
निरख निरख कंरव का कलिका
सजित या अलबेली

लाया या नव मधुकर सग
कलिका का चितवन में
में नारव, नव चकित मृगा सा
रत थी अवलोकन में

मान उल्लसित मयर गति से
थ चुपचाप पधारे
भ्रम में भूला देख मुझे, पर
चले गये मन मारे

मिलन प्रताक्षा की पाश स
भूली आँख खुला जब
पद गमन पग चिन्ह दिखाई
पथ पर आँख ढुला तब

हूक उठी मानस में गहरा
भूल हग पछताय
हत प्रभ नीरव शून्य हगों में
आँसू कण दो आये

दाड़ पड़ी पागल सी चिन्हों
के पीछ मन मार
पर, व मिल न सके फिर, ढूँढे
वन उपवन पथ सार

(२९)

आऊँ, मन का गीत सुना तो
सुरभि-पराग भर सुमनों से
अब तक आँख मिचौना खेलो

सतत कुंज में इधर-उधर उड़
कलि से का कितनी रँगरेली !

कलि-कुंजों में सुमन-पटल पर
दिवस बिताय, निशा बितायी
मधु-ऋतु में आवास रहा, पर
कोकिल-स्वर पहचान न पाया

कितना ढूँढ़ा क्षण क्षण प्रतिक्षण
पर कुंजों से कब निकले तुम ?
इसका निर्णय कौन करे अब
मैं पगली थी, या पगले तुम ?

जीवन के मधु-क्षण बिसर हैं
आऊ नीरव मौन सुना ता

(४०)

वह आया, पर वह मिल न सका
विद्युत् चमकी उर बार बार
कुंजों में फिर घहर घहर
नीरव नयनों में आ निकल
उर के छाकर झर-झर झर-झर

कण-कण में हूक लिय गहरा
दो निःश्वासें आराधना में
निर्मम गगन की छान हुई
दब दब दब दग पथ पर थाम

सहसा उसका पदचाप सुना
पर वे दग-युगल हिम न सकी
टूट गया पर वह उसका
बिखरा कलिका फिर मिल न सका

(५१)

रुक गया अचानक हा गायन
था गूँज रहा मन-वीणा के
चल तारों पर झंकार मधुर
चित्रित से वे अविचल बैठे
थे पास श्रवण-रत मौन प्रचुर
मैं तन्मय थी निज गायन में
चुपचाप चले गए वे उठ कर
जब देख न पायी उन्हें हुई
मूर्छित टूटी वीणा सत्वर
दृग खुलने पर देखा, मस्तक
गोदी में था, महलात थे
मुख-मुद्रा था गंभीर नयन
नभ में थे रह रह गात थे
रुक गया अचानक हा गायन

(५२)

मैं भूल गई वीणा-वादन
हट गई स्वरों से अंगुलियाँ
उस ओर कुतूहल लिए त्वरित
जा लगा नयन सहसा उत्सुक
झट मौन हुए सब तार ललित
हूँ कौन कहाँ क्यों मौन, नहीं
थोड़ा सा भी कुछ ज्ञान रहा
स्वर्गीय अलौकिक लिए सजा
बस गुंजन का ही ध्यान रहा
दृश्यमान अनुपम प्रकाश
में बिखर गुंजन के मधु कण
झर झर उर-प्याला में भर कर

वसुधपन से चिर आस्वादन
मैं भूल गई वीणा वादन

(५३)

चल पड़े दृगों से दृग जल-कण
वह क्षण भर नीरव, मौन रहा पथ पर पद चिन्हों को देखा
अम्बर के मेघाडंबर में चमकी विद्युत् की-सी रेखा
प्रतिपल विस्तृत नभ-मंडल में उड़ उड़ पक्षी-गण गाते थे
कलिका मधुकर, संफुल्ल कुसुम लतिका विटपी लहराते थे
उर में अगणित जलयान मिटे ले करुण दुखद गर्जन-तर्जन
निःश्वासों में चिर एकाकी, पार्थिव मानस के छिन्न छिन्न क्षण
चल पड़े दृगों से दृग जल-कण

(५४)

हा, बीत गए वो हा क्षण
मलयानिल शुचि चुपचाप बहा स्वप्निल भावों में खोया सा
लहरें चंचल अभिराम उठीं सरिता में हलरू पड़ा भागा
लग मान हुए मलयानिल ने चुपचाप किया सारंग संचय
अनुकरण किया अलि ने, कलि ने दिखलाया स्वप्नमय चल अभिनय
लहरें चंचल अभिराम बढ़ीं मतनमय गतिमय वाहित पर
यह गूँज गया गायन पतित कूलों में हर ज्योंही रमा
हा बीत गई मोहा बला

(५५)

हृदय धार कर धवला सम को करता है मन-मोहक नर्तन
नभ के एकाकी कोने में सुखदायी अम्बर का गर्जन
मृदु नीरव है, विह्वल गद्गद्, कण-कण में मादक उठता है
नीरव जल में मोहक मनहर रिमझिम का बुद्-बुद् उठता है
रजनि लुढ़क जाता है तरु-पर्णों पर जल-कण गिरता-गिरता
हरा, साथ नहीं रोता है' कितना जीवन का अस्थिरता ?

(५६)

दुख-झंझा से जब जीवन की नौका डोले डगमग-डगमग
जब स्मृतियों का दुस्तर सागर हो जाये अविरल हो तम-रत
निःश्वासों का पतवार लिये तब एक बार तुम आ जाना !
दब चलें साँस की आँधी में कलियों की पंखुड़ियाँ फर-फर
जब उठे मचल विरहानल से जब उर-लहरियाँ धू-धू कर
आरत नयनों में आँसू बन तब एक बार तुम आ जाना !



एकादश सर्ग



प्रातः का शीतल वायु रुचिर
मानो मोना सा बहती है
मथर मथर ज्यों कहती है
जीवन प्रवाह का अन्त नहीं
गति का निस्सीम, अपार अजिर

कलिकाओं के मधु का संचय
यह प्रतिपल करना जाता है
अचल मरना हो आती है
विह्वल कर देना कभी कभी
सौरभ विनाश का माया मय

कलि के पत्रों में अलि गुंजन
मग्न मधु की चिन्ता में खोया
रसना में जा थक कर सोया
जब हो आता है मृत तृषा
भ्रमर हो आता है उन्मन

यह स्पन्दन या कि मृषा क्रन्दन ?
भर जाता मधु सौरभ से मन
तब थकता मानस बनता तन
पत्तों को चंचलता पाती
गुंजन क्या मधु-अभाव-बन्धन ?
परिहास लहरियों का तट पर
अल्हड़ बन क्रीड़ा करता है
दुल्हन सा ब्रीड़ा भरता है
प्रतिदिन की क्रीड़ा क्या अंकित
रह पाता संसृति के पट पर ?

लहरों पर भग्न ध्वस्त से तृण
अज्ञात दिशा में तिरते हैं
निर्जीव शून्य से फिरते हैं
चंचल अबाध गतिमय जल में
जो मारम यह क्या कथा मसृण ?
सरिता, सुवायु का सम्मिश्रण
जिसमें अलसाल गाता है
नर्तन का पार न आता है
सम्मिलन रूप का चितरंजन
शाश्वत रह पाता क्या यह क्षण ?

चंचल जल का मंजुल कल कल
किस ओर स्वत ही बह जाता
चल स्वयं जान क्या कुछ पाता ?
गतिशील गमन या प्रगति नमन
चल चल या पल प्रतिपल पल-पल ?

लहरों पर तर रह बुद्-बुद
जल में अठखेला करते हैं
उल्लास-निशान निरखत हैं

अज्ञात वेग की वेला में
रह पाता क्या अस्तित्व विरद ?

सरिता के अंतस्तल-तल में
प्रच्छन्न कौन क्या है रहस्य ?
यह जान सका है सार-सत्य ?
उसकी प्रकाश-सम उद्भूता
प्रतिकृतियाँ क्या सत्या जल में ?

इस सरिता का आदिम उद्गम
जल में बहने वाला पत्ता
जिसकी जल में न कहीं सत्ता
पा सकता है जो विवश महा ?
क्या नहीं कल्पना उसकी भ्रम ?

गंभीर स्तरों के अंतर में
किसने अविराम निवास किया ?
दल-दल में बैठ श्वास लिया ?
क्या पूर न सका वे लहरों बहे
सरिता प्रवाह की गति स्तर में ?

सुमनों के अंतर् से सौरभ
मलयानिल अंचल में छिपता
सूने अनंत में जा छिपता
पंखुड़ियों की नीरसता में
छवि भर पाता क्या अरुणिम नभ ?

नीरस, हरित पर्णों का दल
मलयानिल में परवश हिलता
उसका क्या रूप कहीं मिलता ?
यह हरा से हरितर शुष्क बन
गया है बयार वह दावानल ?

मारों

तरुओं का भावाकुल मानस
उन्मन होकर क्या सोता
शांत झील का कितना नाता ?
इस भावाकुलता का सुंदर
करना क्या मूल्य दिखाएँ द्युति !

तरु-शाखाओं का आन्दोलन
छविमय गुञ्जित नर्तन करता
श्रम के स्वेदों को जग हरता
सबको मिलता उल्लास किन्तु
क्या छिन्न भिन्न उसका बंधन ?

चल जल प्रवाह-गति में चल चर
कर पग विपरीत घुमाते हैं
स्वर-ताल भूल रह जाते हैं
उलझन का गति विधियाँ सर्जन
या बंधन की क्षमता पल भर !

अम्बर का झिलमिल ग्रह-मंडल
जल में प्रतिबिंबित होता है
रत्नों में तार पिरोता है
सामित जल के अंतस्तल में
विस्तृत प्रकाश आता है चल !

संपूर्ण अदर्शित अम्बर-तल
नीला भासित हो उगता है
या वह नयनों को ठगता है ?
हा नयन भाँप सत सम्मुख
आकर्षण इतना अधिक सरल !

कण जल पल प्रतिपल तारों-मय
फूलों में वदन छिपाता है

उस ओर दौड़ ही आता है
गति के घातों से दूर गमन
तटस्थ बने रहना जीवन ?

नभ का कोना कोई रक्तिम
प्राची बतलाया जाता है
या पूर्व उदय कहलाता है
यह मूल उत्स या प्रगति-स्रोत
किरणों की गति का महा महिम ?

अरुणोदय-बेला की लाली
अम्बर-तल में छा जाती है
कहते हैं ऊषा आती है
यह स्वर्ण-रत्न या दिनकर के
मस्तक की कोई लिपि काली ?

रवि-गति की प्रतिपल चंचलता
संसृति में ज्योति लुटाती है
सम्पूर्ण जगती मुस्काती है
यह स्वर्ण-हंस हँसता चलता
या ताप-तृषाओं में जलता ?

सन्ध्या-अंचल में अस्तगत
रवि गतवैभव सा लगता है
या अंधकार कुछ ठगता है ?
यह उसके जीवन का इतिश्री
या जीवन की संगति चित् सत् ?

विहगों के कण्ठों का कलरव
ऊषा का स्वागत करता है
वन-उपवन का मन भरता है
सपनों का मंजुल चिन्मय या
आगत बेला का लय अभिनव ?

वृन्तों पर बैठे खग दम्पति
जग की लीला में तन्मय हैं
आयागमनों से निर्भय हैं
विश्रान्तिकाल या पलों में
सूचित की जाती अभिनय गति !

नभ के सूने मन का मन्थन
पंछी उड़ उड़ कर करते हैं
अविरल स्वच्छन्द विचरते हैं
अस्तित्व विहीन, अदृश्य वस्तु
का हो सकता कोई मन्थन !

खग सम्मेलन से रिक्त विटप
नीरव, नीरस से लगते हैं
नीड़ों में बच्चे जगते हैं
संस्मृति की छाया से क्षण भर
हो सकता दूर कभी आतप !

अंबर से आ नीचे भू पर
पक्षी-गण दाने चुनते हैं
मिट्टी में चोंचें धुनते हैं
आधार हीन उड़ना देखा
कर क्या न सतत जीवन दूभर !

नभ के ऊँचे ऊँचे स्तर पर
चीलों का दल उड़ता जाता
धीरे धीरे उड़ता जाता
जग के प्रति उदासीनता अति
तो क्या यह अन्तरिक्ष सुन्दर !

ऊपर की ओर निमग्न नयन
उर में नवीनता भरते हैं
उत्साह अधिक हो घरते हैं

कल्लोल ऊपर की ओर गमन
है मच्छा सचागाण अयन ?

जल में उठ-उठ कर लहर-लहर
वर्तुलाकार मँडराता है
जल में ही लय हो जाती है
प्रसृति उपकरणों के बाहर
जीवन सकता है कभी ठहर ?

बुद्बुद्-अंतमन का परिचय
चंचल लहरों में अंतर्हित
प्रभा-नर्तन में गूढ़ निहित
अस्थिर प्रवाह में नावों का
हो सकता है सुन्दर संचय ?

ऊषा की आदिम स्वर्ण-किरण
जल अतलतल में धँसती है
कंटक शूलों में फँसती है
विपरीत दिशा में बढ़ती है
जीवन के दो असमान चरण ?

किरणों के तारों के कण-कण
गहरे तम में मुस्काते हैं
आलोक कहाँ से लाते हैं ?
जलते रहते अविराम यहाँ
अभिलाषाओं के नीरस तृण ?

दिनकर का नव आहुति वर्तुल
मन के मन का हर लेता है
पलकें विश्राम चाहती हैं
आसक्ति शान्ति द्विगुणी छाया
में जीवन का निर्माण विपुल ?

आलोक शिखा का अवरोहण
नभ से धरती पर छाता है
नाचे साथ ही आता है
प्रतिपल जीवन बहता है या
सहासा-मुख गतिशील चरण ?

भूतल-सीमा के पार क्षितिज
प्रकृति का कोई रेखा है ?
नयनों ने भ्रम देखा है ?
दृष्टान्तवासी का क्या कोई
अभिराम वास्तविक ज्ञान प्रतीत ?

प्राची पश्चिम दक्षिण उत्तर
संसृति के नाम कहलाते
सूक्ष्म मनके को बहलाते
अनुमान याकि वस्तुतः सत्य ?
निर्धारित या कि प्रमाणित स्तर ?

क्षण, घटिका, दिवस मास वेला
जिनसे होता है बोध यहाँ
वेला का सच्चा शोध यहाँ ?
स्मृति-संवेदा — परिचायक
या स्वतः चिन्तना का मेला ?

वल्लरियाँ सफुल, सजल हरिताभ, चपला
विकसित मुकुल विभोर रक्त-नालाभ सुधवला
कुंचित मसृणि प्रतान मसृण शाद्वल सामोदम
पल्लव-मधुर-अधर-दल रागारुण अंतर्-तम

नव कुड्मल-सुगन्ध मृदु-मकरन्द गतिमय
परिमल पल पल चंचल कल वातास प्रीतिमय
शाद्वल-शृंगु पर तुहिन मुक्ता-कण-ग्रथित
कलरव स्निग्ध अधर मुक्तारुण गुंजित, स्पंदित

सुप्त समुत्थित धूत कान्त सक्लान्त, विषदित
किसलय-चपल-अचल तरु खग शिशु सस्पंदित
विस्तृत सुरभित अभ्र श्वास चल मुक्त चतुर्दिक्
नवल-नीलिमा-दृश्य-स्नान खचर-कुल स्वर्गित

निर्झर-झर-झर-झर-स्वर नव कलरव संगुम्फित
रेणु वेणु-स्वन स्वर्ण-बाल-गात अम्बर लुण्ठित
मुखरित कनक विहान हास्य उल्लसित, उमंगित
ऊषा अंतर प्रान्त शान्त मुख भ्रान्त, तरंगित

अभिनव आशा अभिलाषा, विश्वास सुभाषित
सपुट वक्षा श्रद्धा मर्दित, मुक्त प्रकाशित
मुक्ति मुक्त उत्ताल ताल परिवर्त गत बंधन
भू, नभ, जल उन्मुक्त, मुक्त तन, मन, स्वन, स्पंदन

किन्तु आज मानव चिर पीड़ित, दूर न बंधन
आज चतुर्दिक छाया इतस्तत सक्रन्दन
लता, पुष्प खग, मृग सकल स्वाधीन चिरंतन
संसृति का सुन्दरतर घर पर, नर चिर उन्मन

जगती के जनमन में विस्तृत कोलाहल
तिमिर तिरोहित शान्ति-कान्ति स्वर्णिम उदयाचल
धूलि धूसरित व्याप्त प्रान्त अविराम चतुर्दिक्
कुहा मथित भीति [illegible]

पंच [illegible], जीव, संताप, शून्य तम
[illegible] विरत [illegible]
[illegible] पाषाण [illegible]
[illegible] प्राण [illegible]

[illegible]
[illegible] प्रभा [illegible]
[illegible] अविकम्पित
[illegible] धूसरित

क्षुब्ध अब्द, गति-मुग्ध लहरियाँ, पोत भयाकुल
निस्सहाय निरुपाय, हाय तन्मय जन-संकुल
धार मार पतवार हार कूपार पार — तन
पर प्रहार, तट विकट प्रकट परित जलधर-धन

निर्मल अविचल निश्चल अम्बर अघाम्बर
घर्घर घर्घर घोष, कोप संताप कांप हर
विद्युत् रेखा क्षीण हीन तम लीन हीनतर
भामाकार विकार क्षार संसार धार हर

सूनापन, निर्जन वन पत्तन, नीरव वैभव
गतोल्लास, निःश्वास पाप विश्वास विधि भव
दावानल उज्ज्वल अविरल चल प्रबल अनर्गल
धूम धूम ज्वाला माला जाला, कालांचल

तृण-तरु-लता प्रतान म्लान आभावित क्लान्त मन
सरित हरित-जल गतकलकल निश्चल निस्तल मन
शुष्क, रुक्ष पाषाण प्राण श्मशान-जठर भृत
तट अट पर उद्गत प्रकट चट्टान विनिःसृत

उपत्यका सपतित कुपित पाषाण विशृंखल
बालांकुर उर भ्रान्त शान्त सशंक अचंचल
शिला सम उद्दण्ड चण्ड दूधाचल जर्जर
अधित्यका ध्वसावपात, सुनसान खंडहर

महायाम पवमान गान दिग दिगंत शंकित
भग्न-व्यस्त परिग्रस्त-त्रस्त संभ्रम प्रकंपित
अशरण पग विषण्ण, संचरण डगमग डगमग
स्तब्ध क्षुब्ध भव-सूत्र-क्रम विच्छिन्न, छिन्न मग

कैसा था युग स्वर्ण शान्त वह आदिम सुरभित ?
स्वर्ण-प्रात में होगा होगा कलरव सुन्दरित
उड़ते होंगे मुग्ध व्योम में विहगों के दल
अंतस्तल में बहती होगी सरिता कल कल

समता का समतल प्रवाह होगा शिव निर्मल
जिसमें सत्यासत्य, अधर्म धर्म, निश्छल छल
एकाकार अनघ अघ, ईर्ष्या स्नेह, सुधा विष
स्वप्न रहे होंगे ये भेद-भाव सब किल्बिष

जीवन शतदल के स्वर्णिम पत्रों सा विकसित
आशा उज्ज्वल मुक्त स्वर्ण किरणों सी विस्तृत
होते होंगे पावन उर में स्वर्गिक गुंजन
मुक्त सर्वथा मुक्त जगत्-जीवन जन-जन-मन

तब न प्रकंपित होते होंगे चरण अशंकित
करते होंगे शूल-कंटकों को सम्मर्दित
सर-सरिता उत्तुंग शृंग सुनसान विजय पर
चरण प्रगति नाचती रही होगी पथ-मथ कर

तब न झाँकते होंगे दूर निराशा से दृग
लता विटप, पशु, पुष्प-वनस्पति, पवन-मेघ, खग
हर्षित करते होंगे मानव को अतस्तल
सहवासी प्राकृतिक मनुज वह कितना निश्छल !

रो पड़ता होगा वह किसी विहग के दुख पर
मँडराते होंगे अनजान करुण स्वर मुख पर
करते होंगे प्राणों को व्याकुल चिर उन्मन
पावस के प्रिय मेघ घूमते वन-वन उपवन

होते होंगे म्लान पुष्प-लतिका मुरझा कर
सहवासी की किसी प्रथम अनजान विदा पर
बहता होगी प्रिया-विरह में नयन-त्रिवेणी
व्यथित हुई होगी तब खग-मृग-मधुकर-श्रेणी

करता होगा रुद्ध न कोई प्राणों का स्वर
बन्धन का अभाव नहीं होगा प्राणों पर
भार नहीं होता होगा तन मन जीवन पर
वरुण, अरुण, भू, सोम, वायु, नभ सम जन-जन पर

आज वासनाओं से ही जीवन आकर्षित
सीमा-हीन मनुज सीमा में बद्ध प्रदर्शित
स्वार्थ-भावना ही अन्तर में उद्वेलित
शुष्क चिन्तना के पलकों में ज्योति अदोलित

किल्विष के स्वर्णिम सपनों में ऊषा गर्वित
अहं-भावना के अन्तर् का हास न सीमित
विश्वासों के लहरों में तम का क्रन्दन
कलह द्वेष के सत स्वरों में मत्सर स्पन्दन

कहीं मृगतृष्णा बना हुई है ईश्वर-चिन्तन
निर्गुण के सून प्रदेश में कहीं पर्यटन
भक्ति प्रेम की कहीं अलंकारों में गुम्फित
मत-मतान्तरों की काराओं में गति प्रथित
कला कल्पना, कविता, चित्रों में कृत्रिमता
अपना ईर्ष्या-द्वेष-स्वार्थ अपना ही ममता
रजत स्वर्ण के मन-मोहक चक्रों में विस्मृत
आत्मा का संगीत सत्य, शिव, सुन्दर सुनरित

आज नहीं रह गई कला में सृजनशीलता
भक्ति-भावना में व्यापकता मधु-असीमता
एकांगी रह गई मनुज की चिन्तन-वाणी
पद-दलिता रह गई आज भारती कल्याणी
उड़-उड़ कर नभ को छू डालूं चाह रहा नर
एकपक्ष संतुलन हीन गिरता पाता पर
फिर भी नर की भग्न भावना नहीं हारती
कोटर में निरुपाय बद्ध भारती पुकारती

मूल्य नहीं रह गया आज भारती के स्वर का
ज्ञान छिन्न हो गया उसे निज शक्ति प्रखर का
मग्न है उर-वीणा के तारों में क्रन्दन
विष धर को कुण्डलियों के पाशों में चन्दन

आज नहीं नारी को हँसने की स्वतन्त्रता
उच्च विचार विमर्शों में भी है न मन्त्रता
खेल-कूद नर्तन-गायन, चंचलता सपना
पराधीन है कोई भी रह गया न अपना
चेरी, बाँदी आज हुई चरणों की दासी
विधवा वेश्या कुलटा, छल माया, कुछ नाशी
आज बना दी गई वासना का वह गुड़िया
काम-वासना उत्तेजित करने का पुड़िया

विहँसो विहँसो, ज्योति हासिनी !
पत्नी, जननी दुहित, भगिनी
चिर सपीड़ित हे उदासिनी !

तम का विस्तृत कलुषित अचल
प्राणों पर छा रहा अचंचल
अंधकारमय अंबर जल थल
प्रभा-रश्मि भर लो विलासिनी !

'इति, भय, घर तम, पथ पर भी तम
आज गया तम प्राणों में रम
चिन्तन में कृष्णांचल दुगम
ज्योति बिखेरो हे प्रकाशिनी !
विहँसो, विहँसो ज्योतिहासिना !

प्राणों का स्वर चिर दीपित हो
चिंतन का शतदल विकसित हो
जीवन का न पन्थ कलुषित हो
विभासिनी ऐश्वर्य-राशिना !

हो अंतर में स्वर्णिल गुंजन
ध्वान्त क्लान्त हो अमृत मंथन
शान्त करो अग जग का क्रन्दन
शिव-सुन्दर-सत्य-सुभाषिना !

मेरे तो गिरधर गोपाल, न कोई दूजा
मेरे वे आराध्य, करूँगी उनकी पूजा
चाहे बन्धु सगे परिजन से होऊँ वंचित
मिथ्या ममता किंचित् भी न करूँगी संचित

आती जाती हूँ पल प्रतिपल मैं अविरल ही पास तुम्हारे
कभी-कभी जब मैं करती हूँ एकाकी एकान्त चिन्तना
ऊँचा उड़ती सी लगती हूँ ज्ञात धरा होती अकिंचना
ज्यों अम्बर-तल में पतंग ऊँचा ही ऊँचा उड़ जाता है
नीचे आने की इच्छाएँ लुप्त नहीं वह मुड़ पाता है

उस क्षण मैं मधु चयन निरत नव मधुकर की सफुल्ल कलियाँ
निर्झर के रमणीय पुलिन, उपवन की मंजुल कुसुम-केलियाँ
होतीं जग की अखिल वस्तुएँ ये मनोज्ञ नीरस अगण्य सी
अधिक कहूँ क्या, चहल-पहल यह दिखलाई पड़ती अरण्य सी

यद्यपि त्रिविध समीर-हास में खो देती हूँ कभी चेतना
अस्त-व्यस्त मैं हो जाती हूँ पर फिर भी किंचित् न वेदना
पथ पर कितने ही चरणों के आवागमन चिन्ह हैं अंकित
मैं संशय में पड़ जाती हूँ कभी-कभी हो उनसे शंकित

फिर भी मेरी प्रगति न रुकती मेरा पथ गंतव्य सुविस्तृत
प्रेम अमृत की प्रिय पिपासा वाणी हो उठती है झंकृत
शून्य बालुका की लघु कणिका उड़ती पर एक सहारे
आती जाती हूँ पल प्रतिपल मैं अविरल ही पास तुम्हारे

मीरों के चिन्तन में थी स्थिरता अचपलता
दिव्य भावना सौम्य कामना, शिव निश्छलता
उल्लासों पर तैर रहा था भावाकुल मन
तंत्री के चंचल तारों पर गुंजित गुंजन

पर-हीन कैसे उड़ पाये ?
क्षण-भंगुर तन, नश्वर जग है
अमर-लोक के पथ में मन है

एकादश सर्ग

सोच-सोच पंछी पछताये
पंख-हीन कैसे उड़ पाये?

दसों दिशाएँ अंधकार-मय
झंझा में जग के कण-कण लय
पता न, दीपक कब बुझ जाये?
पंख-हीन कैसे उड़ पाये?

तृप्त न हो पाती अभिलाषा
बुद्-बुद् सा मिट जाती आशा
जीवन निर्झर सा झर जाये
पंख-हीन कैसे उड़ पाये?

जिन्हें समझते हैं हम अपने
शेष कहाँ रह पाते सपने?
कौन कहाँ से आये, जाये?
पंख-हीन कैसे उड़ पाये?

जन्म-मृत्यु का छोर नहीं है
जग का कोई चार कहीं है
खोज लिया, पर सफल न आये
पंख-हीन कैसे उड़ पाये?

कवि रहस्य की ओर प्रवाहित
चित्रकार सुन्दरता-प्लावित
गायक गा-गा कर रह जाये
पंख-हीन कैसे उड़ पाये?



द्वादश सर्ग

★

भावों की सरिता में डूबी
ले शान्त हृदय में सुख महान
वह पथ पर बढ़ती जाती थी
धारे धीर सुध-बुध विहान

झंकृत, चल तारों पर नर्तन
करती थीं अंगुलियाँ प्रवीण
गायन लय में भूला खोया
था प्रतिपल वह बाणा पुराण

मम ओर लगे थे दृग नारव
यह कौन कहे, क्या रह दृश ?
पर उर में उठते भावों का
अंकित था उनमें स्पष्ट लास

पढ़-पढ़ कर था मम शून्य मौन
गायिका-दृगों की भाँति शान्त
टिमटिमा रहे दो दृग तारे
ज्योतिर्विहीन थे विपन्न, भ्रान्त

झिलमिला रही थी कसक मूक
छाया था आगे अन्धकार
दो नयन इधर, दो नयन उधर
चारों धूमिल, चिन्तित अपार

गा रहा शून्य, सुन रहा शून्य
दोनों बेसुध चेतना हीन
सगान शून्य में से उठ कर
हो रहा शून्य में था विलीन

परित व्यापा निर्मल, चंचल
संगीत लहरियों में प्रवाह
जिनमें डूब, थे तैर रहे
उठते मिटते बुद्बुद् अथाह

जड़, शून्य काष्ठ की वीणा में
अंतर्हित अमृत मधुर नाद
था शून्य, अचेतन तारों में
भूल अतीत का मधुर याद

ऊँच, भाव सुन्दर टील
थी बिछी स्वर्ण सी पीत धूप
कुछ भी जिसका था छोर रहा
उस पार क्षितिज तक नहीं कूल

पाद के पथ पर था अंकित
मंथर चरणों की सुघड़ छाप
था झलक रहा अभिराम पृथक्
जिनका अपना अस्तित्व आप

करती था मधु ध्वनि का प्रसार
मंथर-गति गायन निरत थाप
चरणों में सतत पिसर रहा
थी इधर उधर से शुष्क पात

यद्यपि वे थे अति शुष्क पात
पर उनमें था शुचि भरा स्नेह
था पद चिह्नों पर लोट रहा
वह श्रद्धा से बसुध अदेह

मंथर-मंथर लय में भूल
रज-कण करते थे नृत्य मूक
संभव है उनके उर में भी
कोई अतीत की रहा हूक

थे यत्र तत्र सुध-बुध विहीन
गायक वाणी के आस-पास
नश्वर-यमुना तट पर जैसे
गोपियाँ कर रहीं विकल रास

सब धूलि-कणों का शुष्क शून्य
मानते, समझते निर्विवाद
पर मिथ्या यह आता उनको
संगीत-नृत्य में सत्य स्वाद

गायक वाणी के करुण गीत
टीले सुनते थे बन मौन
उनकी सुधि में आ बैठा था
जाने नीरव अज्ञात कौन !

सिर धुनते थे सब इधर-उधर
दूरस्थ विटप गायन विभोर
आकुल, अनजान, नीरव रज में
मिट रहा निरंतर नभ्य घोर

बह रहा निरंतर था अपार
अज्ञान दिशा में स्मरण-स्रोत
उसका यह कम्प-कल प्रतिपल था
कर रहा व्यथा को ओतप्रोत

द्वादश सर्ग

गायक-वाणी स्वर-वीणा पर
विषधर को ज्यों थे रहे डोल
उन्मत्त मौन, नीरव थे सब
क्या पीपल, क्या वट, क्या करील ?

स्थावर के उर में भी ला दे
जो सतत व्यथा, करुणा, विषाद
वह धन्य धन्य, सौ बार धन्य
गायक-वाणी का मधुर नाद

सब छोड़ रहे थे विहग नीड़
अपने मन में ले विविध भाव
उनके गायक पर गड़े नयन
प्रकटित करते थे लय प्रभाव

गायक की ही चर्चा केवल
उनके मुग्ध-मुख पर था अशेष
वे भूल रहे थे उड्डयन
कुंकुम नभ तकता निर्निमेष

कितने ही नूतन विहगों की
कितनी ही ध्वनियाँ भूल चूक
अपने गानों में शान्त हुई
लय में खोकर वे बने मूक

गुन गुना रहे थे गायन को
कितने ही खग लय में विभोर
था धूम धाम, नूतन हलचल
गुंजित था वन का ओर छोर

थे अलस नयन, मन मुग्ध शयन
विस्मृत से रवि भी पड़ जाग
नभ में भरते रंग भूल स्निग्ध
लगता था प्रिय वह मधुर राग

मीराँ

स्वर्णाचल से क्षणमात्र झाँक
गायक पर दीं किरणें बिखेर
मगन विस्मय से रवि देखा
सोचा यह कौन अपर कुबेर ?

रवि में सब की थी श्रद्धा पर
आश्चर्य हुआ यह और देख
गायक ने उन पर नहीं ध्यान
कुछ दिया नहीं उल्लास-रेख

वह पूर्वभाँति था उसका बस
अपने गायन में ध्यान एक
रज में बिखरी थीं इधर उधर
दिनकर का स्वर्ण किरण अनेक

पीछे पीछे चलते जाते
थे हरिण-दम्पती मुग्ध, मौन
थे भूल रहे थे चौकड़ियाँ
कुछ ज्ञात न था हम कहाँ, कौन !

भीतर हृतन्त्री गूँज रही
पर बाहर तंत्री और गात
फिर भी अनुगामी था बाहर
भीतर का यह विपरीत रीत

अपने प्रति अवहेलना निरख
गायक पर रवि को हुआ क्रोध
वे भूल गये मानापमान
सद्भाव शान्ति व्यवहार-बोध

स्वर्णाचल से झाँकना छोड़
घन आये सिर पर अप्रमान
बादल-तन्मयता भग्न हुई
टूटा उसका वह गान ध्यान

ज्यों ही ऊपर देखा तो रवि
जलते थे भीषण लिये ताप
वह अपने ऊपर खीझ उठी
मारी पछताई स्वयं आप

था कंठ शुष्क लग रही प्यास
था स्वेद स्राव संतप्त गात
था क्लान्त समारम स्वर्ण काल
खो चुका शून्य में स्वप्नमात्र
गुंजन में खोई थी वीणा
पर अब उसमें गुंजन विलीन
अग जग चित्ताकर्षिका स्वयं
थी तृष्णा से सुध-बुध विहीन

उसके घूमे लोचन अपलक
जल की आशा में सभी ओर
लौटे निराश नीरव हो पर
जल पा न सके वे किसी ठौर

हाँ, पड़े दिखाई वृक्ष सघन
डालों से कुछ ही दूर पास
है वहाँ गाँव कोई अवश्य
यह सोच शान्ति, कुछ हुई आस

मन की विह्वलता और थका
डग पड़े धूप थी दुर्निवार
ऊपर नीचे अंतर्ज्वाला
पछताता था मन में विचार,
गायन वादन में निष्फल हो
मैंने खोया निज स्वर्ण-काल
मन के पाहिन प्रांगण में पर
फैला सहसा यह तर्क-जाल

पथ चिन्ता विस्मृत करते ही
गायन, वादन का लिया ब्याज
पर भूल गई क्षण बीत गए
निस्पंद वायु, आतप-स्वराज

गायक जो, उसमें भावुकता
का होना है यह निर्विवाद
फिर पर भी वह गायक, जिसके
जीवन में केवल ही विषाद

गहरी भावुकता होगी ही
वह इसलिए वह गई दूर
पर नाच-नाच कर आखिर तो
चरणों पर रो देता मयूर

आगे आई तो दीख पड़ा
विस्तृत तट नीचे एक कूप
छाया में ठंडक सोती थी
हारी थी जिससे कड़ी धूप

चहकता लोभ नयनों में
कण-कण में यौवन का उफान
कटि गति में नर्तन परिवर्तन
मधु लिए उरोजों में वितान

वस्त्रावृत, भूषण अलंकृत
दुग्ध घन में विद्युत्-सी रेखा
लख भोली अभिनव सुषमा को
हत प्रभ मीरा उसने देखा

यह भी देखा कोई रोती
ममतायित प्यासी है अथाह
पानी पीने के लिए कूप
के पास खड़ी है छोड़ राह

कह रहा पथिक था युवती से
विनती से, मृदु स्वर में विनीत
अति प्यासा हूँ जल पीऊँगा
यह शीत स्थान सचमुच पुनीत

पग धरने को भी नहीं स्थान
सर्वत्र बरस है रही आग
जल पाने की अभिलाष लिये
जल घट को देखा सानुराग

तुम कहते हो सो ठीक पथिक ?
युवती बोली वह साभिमान
तुम नीच जन काले कुरूप
मैं नहीं करूँगी नीर दान

मानस में धक्का लगा एक
खोया चिन्तन खो गये तार
आवरण हटा निसके साथ
प्यास की तृष्णा का उभार

बुझ गया एक ही झोंके में
चिंतन का दीपित दिव्य दीप
उत्ताल तरंगों पर था वह
कोई भी था न कहीं प्रतीप

स्थिर रह न सकी सपना टूटा
हो गया स्वयं वास्तविक ज्ञान
मिल गया लक्ष्य जैसे पथ पर
बढ़ गये चरण चपल अजान

घट को सागर पर छाया में
थे दृग रहे धर मयूर
मानो उनके दृग कहते थे
युवती, मन इतना क्यों क्रूर !

मीरों

कीचड़ में उग कर द्रुतगति में
उस राही पर श्रीमान श्वान
कब झपटा, भौंका, घात हुआ
उसको कुछ भी था नहीं ध्यान

उस वट की शीतल छाया में
बैठे, खड़े ग्रामीण ढोर
विस्मित से मौन थे अपलक
बस देख रहे थे उसी ओर

डग बढ़ नहीं चक्कर आया
वह नीचा जन, काला, कुरूप
मूर्छित होकर गिर पड़ा वहीं
सचमुच भीषण था ज्येष्ठ धूप

अनजान पास की बदली में
क्षण भर रवि भी जा छुप भाग
फिर उस शून्य अंबर का भी
क्षणमात्र रुका फिर नित्य आग

पर उस सूनी मीरों के थी
सूने मानस में मूक दाह
नभ सी विस्तृत, गिरि सी महान्
प्लावन के सागर सी अथाह

क्या नहीं मनुज ये नीच जन
मानुष हीन, काले कुरूप!
सूनी मीरों थी सूनापन
सूने सूने वट और कूप

इस सुमन पर देखा उसने
घर के चारों ओर आग
चिन्तित अशान्त उसे अपने
प्रियजन का होगा ही वियोग

अज्ञात किसी के आश्रय में
शय्या पर वह है रहा लेट
उस वट की शीतल छाया में
बोला वह शक्ति जरा समेट

क्या आ गया? कहाँ हूँ मैं?
क्यों एकत्रित यह जन-समूह?
क्यों पवन व्यजन से करते हैं?
उर में प्रश्नों का चक्र-व्यूह
मैं नहीं जानता कौन कहाँ
जाते थे तुम, क्या नाम धाम?
केवल इतना ही ज्ञात मुझे
दोपहरी था, था कड़ा घाम
मैं दूर इधर से आता थी
जल रहा चिता सा तप्त धूल
तुम प्यासे थे जल मिला नहीं
जीवन का मुरझा गया फूल
मैं दौड़ा यहाँ उठा लाया
उपचार किया श्रद्धानुसार
तुम ठीक हो गये हर्ष मुझे
अब चढ़ न सकेगा पाप भार
उस मेरे प्रभु गिरधर नागर
ने रख ली सबकी आज लाज
कह कर ऊपर संकेत किया
मुख पर संतोष रहा विराज
निःश्वास लिया फिर बोला यह
मरने की था बस एक चाह
पूरी न हुई इच्छा न किया
फिर जीवन दे कर मुझे आह!

पीड़ाएँ करवट लेती थीं
नभ तक फैली थी लपट लोल
हो रहा समा कुछ था स्वाहा
स्मृतियाँ ही केवल रहा डोल

नीरवता करते हुए भंग
बोला उन्मन मीराँ उदार
तुम मूढ़ रहे हो व्यथित जीव
वाणी में पूरित था दुलार

सुख नहीं धरा है मरने में
यह जीवन भी है सत्य एक
है युद्ध महा जीवन सारा
दुख बाधाएँ आतीं अनेक

दुख बाधाओं से घबरा कर
तुम मरने को कटिबद्ध आज
पर, जरा शान्ति से सोचो तो
है मूढ़ मृत्यु या सत्य व्याज ?
निज स्वस्थ छोड़ शिशु का तन जो
चाहा करते उदरस्थ बाल
वे पागल हैं केवल उनका
है अंधकार से भरा भाल

जीवन से विमुख भागना हो
तो मृत्यु नरक बस यही पाप
जो यहाँ किया करते क्रन्दन
वे आगे भी करते विलाप

दुख ही दुख केवल नहीं यहाँ
सुख भी है दुख के ही समान
यदि एक अब्धि सा विस्तृत तो
दूसरा हिमाचल सा महान्

सुख दुख का सम्मिश्रण जीवन
सुख का प्रभात, दुख का विराम
छाया प्रकाश प्राकृतिक सत्य
जो सत्य, वही है शिव, ललाम

अविराम सत्य का ग्रहण धर्म
सत् से बढ़ कर कुछ नहीं कार्य
भय कष्ट धैर्य धरता चाहे
पर सत्य नहीं छोड़ते आर्य

क्षण सुख-दुख में लीन एक
तुम को जग का कुछ नहीं ध्यान
क्या कभी जरा सोचा यह भी
प्राणी असंख्य पीड़ित महान्

दुख दूर करें उत्सर्ग प्राण
क्या जीवन का बस यही ध्येय ?
पतझड़ का पत्र-हीन तरु क्या
समझा करता निज प्राण हेय ?

दुख में नीरसता स्वाभाविक
पर प्राणी एक निमित्त मात्र
वह स्वयं नहीं करता केवल
साधन है उसका नहीं गात्र

उस प्रभु की लीला अग जग में !
जिसने यह इंगित दिया सार
अमृत प्रकाश की प्यास करो !
सत को भी बाँटा तिमिर घोर

सुख की सुख सुषमा लिये मन
तुमने माया पथ स्वयं आर
जगती के शुद्ध सत्य में हट
तम में व्याप्त कर लिया पार

सुख दुख जितना हो, ग्रहण करो
गाओ गिरधर के सतत गान !
जो होना है, वह होगा ही
नागर का ऐसा ही विधान

साधन ठहरे हम तो अपने
यदि मरना जाना नहीं हाथ
तो क्यों रोयें ? क्यों हों निराश ?
क्यों रहें न प्रभु के साथ-साथ ?

जड़ या चेतन संकेत बिना
प्रभु के तज सकते नहीं प्राण
उसकी इच्छा के बिना पत्र
भी हिल नहीं, पायें न त्राण

दुख पाते इसका हेतु एक
मानस में निग्रह नहीं त्याग
अपने ही गायन में उलझे
सुनते न सत्य का कभी राग

यदि निज सुख दुख से ऊपर उठ
जीवन पर कभी करें विचार
तो जान उठेगा कण कण में
क्षण क्षण परिवर्तित जगत्-सार

दुख ही उन्नति का मूल स्रोत
दुख में क्यों साहस रहे भूल ?
हँसता जग का मानस देख
काँटों में ही गा सदा फूल ?
पथ पर कंटक आते ही हैं
तम में ही उज्ज्वल सदा दीप
दिन-रात निरन्तर भटक अटक
पाता है मुक्ता कभी सीप

जीवन है शुचि सरिता बहती
सरिता का ध्येय गमन गतिमय
उत्थान पतन में सम अभिनय
अभिराम, सरल, विस्तृत उर में
लहरें अगणित उठती रहती
जीवन है शुचि सरिता बहती

पथ कर देता ऊबड़ खाबड़
कंकड़ चट्टानें पथ में पड़
व्याघात, विमर्द, पंकिल उर में
फिर भी नव तान छिड़ी रहती
जीवन है शुचि सरिता बहती

पल प्रतिपल शंकर पर ठोकर
खाता गर्तों में पड़-पड़ कर
कल-कल से जग-जग को फिर भी
भरता सब कुछ सहता सहता
जीवन है शुचि सरिता बहती

दुखमयी नहीं आनन्दमयी
है सृष्टि यहाँ सुख बिना बन्धन
मानों न देखा दृष्टि डाल
नभ ताक रहा यह निर्निमेष

मरना ही है तो यों न मरो!
तुम तजो जगत् के लिए प्राण!
जिससे यह जीवन सफल रहे
युग-युग तक पल कान्ति प्राण

भावों में था उत्थान-पतन
सब बातें सुनते रहे मूक
सब नीरव थे स्याम स्याम
मानस से दूर हुई न हूक

सबके मानस में विस्मय था
गड़ रहे उसी पर सभी नेत्र
नीरवता ने सबके उर में
करुणा का था कर दिया क्षेत्र

करुणालय उर के वरुणालय
में लहरी उठती थीं उत्सुक थे
परिचय पाने को उत्सुक थे
चिर अपलक दृग नीरव नितान्त

अपरिचित एक उनमें से ही
बोला कोई पोंछ स्वेद
जिज्ञासा है तुम कहाँ शुभे!
परिचय क्या है? क्या कथा भेद?

मीरा पर उसके दृग घूम
वह शुष्क-कंठ वह शुष्क प्राण
कुछ हुई बोलने को उद्यत
अति विषण्ण, क्षोभ ज्यों विद्ध-बाण

निःश्वास साथ निकली वाणी
अपनापन का भी था न बोध
आतुरता फैली व्यथा-म्लान
नीरवता ने भी किया विरोध
बुद्-बुद् का कैसा परिचय?

जग के अनन्त निर्झर में
जिन अगणित चल लहरों ने
अति धूम मचाया प्रतिपल
नर्तन कर क्षण क्षण

अविरल क्रन्दन चट्टानें
कितनी ही पथ में आईं
क्षणभर रुकीं किन्तु जरा भी
जिनको वे रोक न पाईं

वे लहरें आज कहाँ हैं
कह सकता है क्या कोई ?
वह मतन आज कहाँ है
बतला सकता क्या कोई

फिर मैं तो क्षण भर नीरव
कुछ मौन करूँगी अभिनय
बुद्बुद् का कैसा परिचय ?

उत्सुकता कुछ कम हो न सका
परिचय में था गंभीर ऊह
आकर्षित अति उस ओर हुआ
जिससे विस्मित वह जन समूह

उनमें से कोई यों बोला
यह परिचय तो सबका समान
सब ही जग निर्झर के बुद्बुद्
सब क्षण-भंगुर सब नाशमान

दार्शनिक नहीं, वास्तविक बना
छोड़ा यह अपना ब्रह्म ज्ञान
क्यों दूर कर रहा व्यर्थ बहिन !
बाला फिर गाना गान-तान

खिल खिला पड़ा अपरिचित पुरुष
वह यों कह सब हँस पड़े लोग
सबका मन हलका, दूर हुआ
नीरवता का अति शून्य राग

पर वह कुछ भी हँस सका नहीं
बन गई और भी गहन, शान्त
बोली यह भारी भी वाणी
नीरव तन मन, दृग शून्य श्रान्त

मीराँ

परिचय हो तो परिचय दूँ मैं
असहाय दीन, मैं निराधार
माँ, बाप ससुर पति स्वजनों का
मैं पा न सकी जी भर दुलार

धन धान्य-स्थान पर यह इकलो
खोना कह दो या इस बीच
जगत में मेरा स्थान नहीं
कोई न ग्राम में है निवास

कहने को सब मीराँ' कहते
'मीराँ मेड़तणी' पूर्ण नाम
बस रहे दृगों में नन्दलाल
उनके चरणों में हो विराम

कह कर यह मौन सी म्लान हुई
साँवलिये की दुलहिन अनूप
भिन्न था ग्राम्यजनों का यह
कितना सच्चा वास्तविक रूप!

नगरों में कितना कोलाहल!
रह गया यहाँ तो महा स्वार्थ
मिथ्या गुण-गान श्रवण कर कर
सब होते रहते हैं कृतार्थ

कृत्रिमता में बस गया जीवन
कृत्रिम मन कृत्रिम खान-पान
कृत्रिम चिन्तन, सम्मान दान
कृत्रिमता में मृतप्राय प्राण

पावन ग्रामों में भी अपना
पनपाया ईर्ष्या — द्वेष — जाल
ऊँचे-नीच का भेद भाव
इनके चिन्तन में किया ढाल

द्वादश सर्ग

निर्जन की नीरवता मुखरित
सब हो विह्वल गद्गद् विशाल
सुन रहे भावना में बह कर
मीरों की गिरधर-गान-माल

दृग-कोरों में झर झर चंचल
गिरता था रज-तल में अशान्त
दृग सीपी खाली होती थी
निखरी था मुक्ता सजल, कान्त

ग्रामीण सभी हो करते थे
अपने पर पश्चात्ताप आप
वे सोच रहे थे यों मन में
यह भेद भाव है महापाप

सब जन के उल्लासों से हो
होता है हर्षित सुखी ग्राम
नीच-ऊँच का भेद व्यर्थ
अपना-अपना सब करें काम

गुण की ही पूजा आवश्यक
जिसमें ज्यादा गुण, वह प्रधान
छाया रहता रज में हाटक
षट्पद के उर में मधुर गान

यह ध्रुव प्राकृतिक सत्य, पंक
में करता है पंकज निवास
आश्रय कृमिज, काष्ठज पावक
गुण के कारण पाते विकास

मीरों की जय मीरों की जय
नभ-चुंबन करता था निनाद
मीरों हर्षित सी चली गई
हो गया दूर सबका विषाद

एकत्रित जन सब चले गये
रजनी आई, दिन गया बीत
सब भूले गये थे बातों को
पर पंथी का था वही रीत

यह सोच रहा था जीवन पर
आँखों के आगे था अतीत
अविराम निराशा मानस के
मधु-स्वप्नों को थी रही जीत

जितना तम नभ में फैला था
उतना ही अन्तर् में अपार
तम में तारों की ज्यों उर में
स्मृतियाँ जलती थीं दुर्निवार

जग सोया था मधु निद्रा में
उर में छाई थी मधुर आस
उसकी साँसों में दुख, पीड़ा
जगती की साँसों में विलास

उसकी साँसों में और निशा
की साँसों में बस एक तान
यह भी नारी, वह भी नारी
जग को इसका था नहीं ध्यान

यह नव युवती और वह मीराँ
दोनों नारी दोनों समान
पर दोनों में कितना अंतर!
दोनों का अपना पृथक ध्यान

यह अभिसार में मग्न हुई
पामर, कुल का एक ध्यान
यह करुणा की प्रतिमा जग के
दुख सुख को उर में लिए तान

पर, यह तो मेरी व्याख्या है
यह तो मेरा ही दृष्टि-कोण
मैं अपने सुख-दुख के कारण
कर रहा किसी को मुख्य, गौण

मैं बुरी समझता इसीलिए
सुख को कर सका न नार दान
उसको अच्छा, पर यह तो है
संकोण बुद्धि का व्यय ध्यान

मानव अपूर्ण है उसमें तो
त्रुटियों का होना सत्य, ठीक
मुझमें भी कितनी ही त्रुटियाँ
मानव त्रुटियों का ही प्रतीक

पर वह सचमुच कुत्सित ही है
जिसने न तृपित को दिया नार
त्रुटियाँ न, वहाँ तो अन्धकार
अभिमान भरा मिथ्या अघार

यह नारी मानव नहीं, देव
जिसने पीड़ित से किया प्यार
कितना उदार उसका वाणी!
अब चढ़ न सकेगा पाप भार

उसने मरते को जीवन दे
यों दिखलाया कर्त्तव्य-कूप
"हँसने, जग को सौरभ देने
काँटों में ही तो सदा फूल"

उपयुक्त स्नेह सत्कार और
सेवा उसकी कितनी महान्!
अभिमान नहीं उस पर भी कुछ
स्वजनों जैसी ही बात ध्यान

है संस्थितियों का दास मनुज
सचमुच स्थितियाँ ही हैं महान्
स्थितियों की धाराओं में ही
बहते रहते हैं सब समान

यह युवती जो कुछ कहती थी
पर यह भी तो है सत्य बात
पामर, नाचा, हूँ शूद्र, म्लेच्छ
मैं सचमुच ही अति-कृष्ण-गात

वह भाग कर न सका चिंतन
दुख व्यथित हृदय में जली आग
ज्वालाओं में यह धूम बना
आशाओं का अवशिष्ट भाग

भीगा पलकें नभ ओर उठीं
फैला था जग पर तिमिर घोर
सब की साँसों में झूम पवन्
सब हो थे निद्रा में विभोर

पर वह एकाकी जाग रहा
था अपने में ही उन्मीन
प्लावन की क्षुब्ध तरंगों पर
सुध-बुध विहीन ज्यों विवश मान

वह उठ चल पड़ा गम्य लिये
मार्तो सा मधा-प्राण महान्
अपना सुख-दुख रह गया गौण
जगती के दुख का लिय ध्यान

यह युवती भी चिन्ता-नत थी
अपने ऊपर या उस स्व-
नयनों भाग पट और रूप
था व्यथित पथिक अति प्रिय स्वरूप

दोपहरी की बेला माँगा
जल मैं बोला पर साभिमान
नीच कुरूप को कभी नहीं
दूँगा जाओ! मैं नीर-दान

वे शब्द हृदय में चुभते थे
मारों आँखों में रहा डोल
उसकी वाणी चिंतन, सदा
तन के कपाट सब रहे खोल

वह आत्म-ग्लानि था पर, उसमें
जग भर का चित्रित था स्वरूप
मारों के व्रत की आभा में
देदीप्यमान थी वह अनूप



त्रयोदश सर्ग

★

आशा का विस्तृत है दुकूल
जिसके अंचल में हरा भरा रहता जीवन का विकच फूल
आशा रवि का सा कनक-सूत्र जिसमें ग्रथित क्षण ज्यों प्रवाल
जीवन के कण-कण में अविकल भरता नूतन उल्लास माल
मुस्कान दिव्य जो वारिधि का चंचल फेनोज्ज्वल सा तरंग
जिसके अंतर में लिये लिये उड़ता रहता है मत्त भृंग
आशा जीवन का मुख्य मूल

कर आशा का आवरण छिन्न
जब प्रबल निराशा अँधराती अविरल से अपना दशा भिन्न
मन दीन-हीन सर्पों के से फन जीवन पर करते हैं प्रहार
चारों ओरों से जग पड़ते सूक्ष्मातिसूक्ष्मतम सा विकार
घिर आए अचल पहाड़ों जैसे रजनी में अन्धकार
लहरों में डगमग हो उठता जीवन का नौका निराधार
जीवन हो जाता छिन्न भिन्न

मिल पाता कोई नहीं कूल
झोंकों में यों उठती, गिरती झंझाओं में ज्यों सूक्ष्म तूल
यों इधर-उधर से उधर-इधर हो हो उठता है महा भ्रान्त
लहरों के तीव्र थपेड़ों से जीवन-नौका जब महा क्लान्त
तब ध्रुव तारे की ज्यों आशा करता जीवन का पथ प्रशस्त
पवमान, तिमिर आते जाते पर वह होता तब भी न अस्त
तट पा जाती भी कूल-कूल

चिन्ता जीवन का है न ध्येय
चिन्ता हीन जीवन कहा न, जीवन में चिन्ता भी न हेय
इतना ही चिन्ता आवश्यक जो जीवन को दे गति अनन्त
इतना न उचित जिसमें सुन्दर जीवन कानन रह जाय वृन्त
आशा भी और निराशा भी, पर दोनों में आशा महान्
प्रतिपल आशा का स्वर्ग इस जीवन में भरता है उड़ान
आशा के ही गुण गान गेय

आशा है किरणों का वितान
निशि पार फूल पड़ती स्वर्णिम हो जाता रंजित यहाँ विहान
पल-पल प्रतिपल विहगों के दल हो उन्मन कलरव में विलान
जल-राशि-लहरियों में चपल क्रीड़ा कर उन्मन मधु मान
मधु हो मधु का गुंजन चलता गायन गा उन्मन मधुराक
पर प्रखर निराशा की रजनी जिसकी गति का मग न लाक
नैराश्य अमा का तिमिर म्लान

पतझड़ का आता म्लान काल
चल शाखाएँ मुरझा जातीं, पीला पड़ जाता पत्र जाल
डंठल ही बन कर रह जाता विटपी का आच्छादित शरीर
हर लेती कोई हरा भरा सुन्दर, मंजुल अभिराम चीर
चुपचाप शून्य में खो जाता विटपी का वह वैभव सुकान्त
फिर भी आशा प्लावित अन्तर विश्वास प्रपूरित हृदय प्रान्त
आशा की छिपती नहीं झलक

गिर पड़ते पत्ते टूट टूट

अभिराम सरस जीवन उनका अंधड़ मुस्काता लूट-लूट
कर उठते वे मर्मर-मर्मर चरणों के नीचे शुष्क प्राण
कंटक-शूलों में जा फँसते जीवन-आशा में रुद्ध प्राण
न वृन्त-पतित, वे शूल-ग्रथित पर फिर भी कब अस्तित्व-ह्रास?
डगमग-डगमग नभ निराधार, इस पर भी आशा का प्रकाश

आशा अमृत की मधुर घूँट

हर शाखा शाखा में विहान

अंकुर में अंकुर निकल निकल तरु होता वैसा ही महान
गायन गाते विहगी विहंग डालों में अल्बेली भ्रमान
पल्लव-अंतर में चाकड़ियाँ भरता अरुणोदय का प्रकाश
तरु-पर समृद्धि का यह रहस्य होता न कभी यह कुछ उदास
बाधाएँ आतीं पर सहता होता न व्यथाओं से निराश

है व्यथा निराशा गरल पान

विटपों का पर्णों का न शोक

तुम भी हो तो, पाल नीरस, पत्तों को सकता कौन रोक?
ये झड़ते हैं, वे पड़ते हैं होता यह सब नियमानुकूल
मिट्टी के बनते पर्ण और पर्णों का अंतिम साँस धूल
संसृति के फिर परिवर्तन पर तो पड़ता जीवन का न लक्ष्य
जग स्वयं और उपकरण सभी उस महा काल के ग्रास भक्ष्य

जीवन-पुष्प का ताम्र नाक

विटपों में पर्ण न सब समान

पर सबके अंतर में विस्तृत विटपों के ये शाश्वत प्रतान
कोई गीला, कोई पीला, पर सब विटपी के जन्म-ज्ञान
सब पर समान सच्चा प्रमाण, सब पर ही बहती मलय वात
सब अपनी-अपनी परिस्थिति में अकुल-बकुल, यह निर्विवाद
कितने ही में उल्लास रंग जाते कितने ही में विषाद

संसृति का ऐसा ही विधान

तरु को होता जब दुःख महान

जब हरे भरे पर्णों के ही अधपक लेता है क्रूर प्राण
तब उसका क्रन्दन आर्तनाद नभ में खोता है बार-बार
उस समय हुआ करती उसकी दयनीय व्यथा पूरित पुकार
उसकी शाखाएँ और मूल हो उठते हैं कर्तव्यमूढ़
पीड़ा, विपदा, क्रन्दन, दुख में कोई प्रच्छन्न रहस्य गूढ़

जीवन में कटु व्यथा महान

तरु के बीजों का आत्म-त्याग

मिट्टी में मिलकर हँस पड़ता, इसका है केवल हेतु राग
सूक्ष्माति-सूक्ष्मतम अंकुर में अंकित स्वरूप तरु का विराट्
जीवन अँगड़ाई ले उगता धरती के मध्य स्तर छेद, काट
उसको न रोक पाती पृथ्वी उसको न सकी ऐसी मरोड़
वह घोर घटाओं में न गला यों वर्ष हुए लाखों, करोड़

वह छिपा न छुपकर दूर भाग

आतप आता भीषण ज्वलन्त

भू का कण-कण जल-भुन उठता अम्बर में होते घन दुरन्त
प्रखर ज्वलन्त, हिलते न विटप नीरवता का साम्राज्य शुष्क
दावानल सी लपटें उठतीं चलता समीर सा महा रुक्ष
सारी संसृति जल-भुन जाती पर जीवन फिर भी सरस शान्त
इसकी गति रुक पाती न कभी लपटों का कुछ न प्रभाव क्लान्त

जीवन अनादि जीवन अनन्त

आतप जाता ले शुष्क म्लान

सूखा खिन्न मूक तन मन प्रतिपल बगर कर शुष्क पान
लतिका की शुष्क धमनियों में होता जीवन-संचार मार
फूलों की सुन्दर शय्या पर रिमझिम का होता मधु विहार
परियों का सा मंजुल मेला लगता कलिकाओं का अमन्द
सारस की ललनाओं में भी जीवन होता है यहीं धन्द

जीवन के विस्तृत हैं प्रमाण

पावस आता है लिए गान

जीवन में पावन जो भर भर खिल खिल उठते हैं प्राण प्राण
अनुकूल वायु-मंडल में हो पावन का होता है विकास
स्वाधीन सुख नाक्षाधर में ही लग सता है शान्ति श्वास
संताप, शान्ति आवश्यक है, जीवन के लिए स्वतन्त्र काल
जल पूर्ण चिरतन सर में ही विकसित होता है कमल-नाल

स्थितियाँ हों उन्नति का विमान

गिरते जब झर-झर उपल-खंड
हम हँस पड़ना तब व्यस, नाच नाचना हिमानी हो प्रचंड
उल्कापातों के ताँडव से धरा उगती धरणी विशाल
काले नन्दों का अन्धकार ढकना जग का आवरण डाल
इस महानाश की वक्षा में भी जीवन का रुकना न गान
जीवन भाषा की वीणा पर होता है लिए यह प्रगति तान

जीवन का सूत्र अपर, अखंड
बह-बह जाता है भार शुद्ध

चट्टानों का कर्कश शरीर करता है बारबार रुद्ध
पथ रोक खड़ा हो जाता है दुर्धर्ष प्रस्तरों का समाज
उत्तुंग शिखर प्राकारों का आगे दाँयें बाँयें प्रभाव
रस धारा के रुकने में चरण, उसका बना हो ताण्डव रंग
चट्टानों में यों घुल जाना ज्यों महासमर में प्रखर खंग

जीवन है एक महान् युद्ध
जन्दों में हँसता वह्नि-नृत्य

होते रहते विभ्रमन्त में काल अण्डों के कृष्ण दृश्य
गाढ़ान्धकार के बादु पाप चपला का सत है समट
उसके स्मित आनन का उज्ज्वल द्युता है नभ उल्लास भर
उस क्षण होता यह ज्ञान ज्योति का दान याया ! विनाश
पर तम का बन्धन छिन्न भिन्न कर हँस उगता है महोल्लास

जीवन में नव उल्लास सत्य

दूर्वा दल का दल वर्द्धमान
लघु-लघु से तिनकों का संचय, जो हरा भरा कोमल महान
कोमलता जीवन का संबल जिसमें मानवता प्रवहमान
झंझाओं के भी प्रलय-नृत्य ऊपर उड़ते ज्यों वायुयान
नित हरा-भरा ही रहता है कोमलता का अभिराम मूल
आतप में भी न झुलस पाते उसके मंजुल चिर-नवल फूल
शाद्वल-जीवन का ही वितान

अविरल चातक, दादुर मयूर
मंजुल मधुमय स्वर में गाते प्रिय दशों दिशा में दूर-दूर
उनकी आकृतियाँ भाव प्रवण जो लोकोत्तर-आनंद-लीन
जिनमें न हर्ष की सीमाएँ अविराम प्रवाहित जग-जनीन
आनंदमयी ही अखिल सृष्टि जीवन भी यह आनंद पूर्ण
आनन्द-लीन होता आखिर होकर आनंद प्रसून भ्रूण
जीवन वह जो आनंद-पूर

सर में उठती है लहर लोल
बढ़-बढ़ रह जाती इच्छा सी चंचल तरंग ग्रंथियाँ लोल
उद्वेलित हो उगता समस्त भावाकुल सा अविराम ताल
मानो पावस की झंझा में गतिमय नौकाएँ छिन्न-पाल
जल का वातावरण क्षुब्ध कर देता पावन को अशान्त
चंचल लहरों की ज्यों नर्तित होतीं अभिलाषाएँ अक्लान्त
चरणों दूर्वों पर डाल जाल

सर में उगता है पुंडरीक
जल में रह कर जल के ऊपर ही रहता यह दे सीख ठीक
परिस्थितियों के ही दल-दल में जीवन का संवर्द्धित मृणाल
परिस्थितियों के ऊपर रह कर, पर रखता शाश्वत उच्च भाल
कर ग्रहण कीच का सार-तत्त्व सौरभ देता जग में बिखेर
जग का मधुमय स्वर्णिम गुंजन मँडराता परित घेर-घेर
उन्नत शिर जीवन का प्रतीक

उगते ऊषा में अंशुमान

कमलों की कारा से विमुक्त हो जाते तत्क्षण मधुप म्लान
जीवन यह [illegible] जिसमें उज्ज्वल दिनकर किरणों का सा प्रकाश
ईषत् स्मिति के ही इंगित पर होता तन्द्रा-बन्धन विनाश
अपने ही बंधन में सीमित था जीवन वह है नारकीय
वे नहीं उच्च वे तुच्छ, हीन, जिनके उर में परकीय स्वीय

जीवन रवि की स्वर्णिम उड़ान

मधुपों का सतत सहस्र-नाद

नीरज के खिन्न प्रसूनों का कर देता दूर व्यथा, विषाद
वे खिल खिल से पड़ते छविमय गुंजन-तन्मय आलोक-भास
उनके आनन की श्री सुन्दर होती न कभी किंचित् समाप्त
अगणित संगीतों का स्वरूप यह जीवन जो ज्योतिर्मान्
मृतप्राय विफल हो रहता है हो जाता है जब मग्न गान

जीवन अनन्त का मधु निनाद

अम्बर में उड़ते हैं विहग
क्षितिजों तक विस्तृत मुक्त व्योम उर में भरता रहता उमंग
वह भी क्या जीवन जिसमें कुछ होवे न भावना का उड़ान ?
उन्माद राग रंगों का स्वर जिसमें मिश्रित कुंकुम विहान
बन्धन की सीमाएँ उलाँघ ऊँचे-ऊँचे स्वर पर प्रयाण
स्वाधीन वात-आवरणों में हो विकसित होते सतत प्राण

बन्धन में होते स्वप्न भंग

जब हो आता है निकट नीड़

अविराम श्रान्त पथ-क्लान्त पंख हँस हँस उड़ते, उड़ते मर्माड़
प्राणों में पुलकित चेतनता करती निर्माण उच्छ्वल लोक
उल्लास हास की श्री हरती जीवन के दुख विश्रान्ति, शोक
कोटर के तिनके तिनके में जीवन की घटनाएँ अनन्त
सौन्दर्य भरित इतना जिसका कल्पना-लोक में भी न अन्त

कोटर जीवन-आधार राग

शावक-कुल का क्रीड़ा विहार

तरु की शीतल सुरभित छाया कोटर के शाद्वल मजुतार
अपलक निहार सब कुछ बिसार खग हो उठते भावुक विभोर
अपने हर्षित उद्गारों से गुंजित कर देते ओर छोर
ममता ही जीवन का स्पन्दन उसके अभाव में जग असार
रागात्मक बन्धन नैसर्गिक ग्रथित जग भर के तार तार

ममता ही जीवन का प्रकार

संध्या के अंचल में अशान्त
नव खग कलरव गुंजित होता हतप्रभ सा रहता व्योम प्रान्त
नभ के अधरों की मृदु शान्ति हो जाती नीरस सी उदास
बीता क्षण बन सपना चिन्तन ग्रस लेता जीवन का प्रकाश
बीते युग का स्वर्णिम वैभव जीवन पर करता महा घात
क्षणदा का गहरा अन्धकार सा छा जाता, होता न प्रात

सस्मृतियों का धूमिल ध्वान्त
सुनसान पन्थ में पथिक श्रान्त
रवि-गति पर अपने लगा नयन हो जाता है कर्तव्य-भ्रान्त
उसके अन्तर् की गति विधियाँ संध्या की धूम शिखा समान
मन्थर-मन्थर सा उदासीन पाता न शान्ति नैराश्य म्लान
वह बढ़ता पर उसकी गति में आशा की किंचित् कण-मात्र
एकाकीपन की परिस्थितियाँ सूना कर देतीं हृदय गात्र

मझधार शेष जीवन दुरन्त
घर घर में जलते हैं प्रदीप
वे जिस जिस स्थल पर जलते हैं रह पाता नहीं तिमिर समीप
लघु सा दीपक लघु-लघु तन-मन पर नहीं कभी वैराग्य-भाव
जल जल कर आलोकित करता परिस्थितियों पर अपना प्रभाव
जलते जाना ही साधक है रश्मियाँ पुष्ट करतीं विवेक
जड़ता के प्रांगण में अभिनय आमुख शान्ति करता अनेक
दीपित जीवन तम का प्रतीप

दीपक में करता पालन स्नेह

दीपक के चिंतन में ही थे ये देते अपना स्वर्ण-देह
रहता कोई भी नहीं स्वार्थ ये इतने होते हैं उदार
जीवन को उच्च बनाता है कालिमा-हीन निःस्वार्थ प्यार
अपने में और पराये में तब रहता कुछ भी नहीं भेद
दारुण से दारुण पीड़ा में भी होता है कुछ नहीं खेद

जीवन का निश्छल प्रणय गेह

गहरा नभ में नक्षत्र-जाल
झिल-मिल झिल-मिल करते रहते जैसे मालाओं के प्रवाल
दे पाते जग को कुछ न ज्योति यद्यपि विस्तृत हैं गुच्छ-गुच्छ
वे केवल अपने में सीमित, उनका तन, चिंतन, हृदय तुच्छ
उनका जीवन औदार्य शून्य जीवन उदारता से महान
आत्मा-विशुद्धि ही मुख्य हृदय-संकोचन अधःपतन प्रधान

जीवन रण में औदार्य ढाल

छाया रहता है अन्धकार
सूने-पन में नयन मौन कुछ खोज में पाते हार हार
मनुज शंकाकुल प्राण किन्तु यह ज्ञात न होता कौन राह !
ही रहता डाँवाडोल ज्ञान, ठोकर पग-पग पर आह ! आह !
सत्य के मग का दृढ़ प्रहरी यह अन्धकार जो ज्ञान-ख्यात
इसके आधार बिना होता संभव न ज्योति में आत्मसात

जीवन यह तम के नहीं पार

करते वे ही आलोक प्राप्त
जो अपने जीवन के सब क्षण तम में कर देते हैं समाप्त
यदि तम न रहे तो यहाँ ज्योति का होवे कोई भी न मोल
तम की अंतिम सीमाओं में रहता प्रकाश का मर्म मोल
तम-बाधा पर वह ही सबल, उसके अन्तर में ही प्रकाश
जीवन का विस्तृत अन्धकार ही जीवन में भरता विकास

निश्चय, जीवन में तिमिर व्याप्त

होता अविराम व्यतीत काल
क्षण-क्षण कर-कर पल पल हर कर दौड़ा आता कोई कराल
वह वज्रदंष्ट्र अपने तन में ले शत-शत दिग्गज अस्त्र-वर्ग
करता आता है महाघोष ज्यों पावस निशि में कृष्ण मेघ
उसकी जिह्वा में आकर्षण, जाते सब उस ही ओर भाग
ऐसा कोई अपवाद एक जिसको उसके प्रति है विराग
क्षण मुक्ता चुगता वह मराल

जीवन सम्मिश्रित दुग्ध नीर
इस नीर क्षीर का ज्ञान जिसे वह ही पा सकता बुद्धि-सार
प्रत्येक बिन्दु में तथ्य भरा वह तथ्य किन्तु प्रच्छन्न, गूढ़
पाते वे जो रखते विवेक वे रहा दुख पा महा मूढ़
जीवन के विस्तृत सागर में वे ही कर सकते हैं विहार
प्रत्येक क्षणों का प्रतिपल का, जिनके अंतस्तल में विचार
मझधार डूबते हैं अपार

उड़ता रहता है सतत रत
विस्तृत असीम के अंचल में अविरल चंचल स्वच्छन्द चेत
वह मन्थर वायु लहरियों में परियों का सा करता विहार
बिखर पड़ते निखर पड़ते उसके भावों के तार तार
बन्धन में उसके कंठ रुद्ध, वह सदा विचरता दिवस-रात
उलझन की कारा में नीरस निष्फल बन जाता हृदय, गात
उलझन में जीवन बने प्रेत

उत्तुंग महान् नगाधिराज
जो वसुधा के वक्षस्थल पर नभ के प्राणों तक रहे राज
शत-शत अगणित तरुवर जिनके रोमों का ज्यों होता प्रतीत
जिनके अंचल में लक्ष कोटि दिनचर्या जन्तु करें व्यतीत
वे उन्नत गिरि ऊँचे नभ में भय मेघों का सुनते निनाद
दुख सुख से ऊँचे स्तर ऊपर उद्गम से हो जाता विषाद
उन्नति ही जीवन का उत्थान

जग में मुस्काता औषधीश
नित अमृत की वर्षा करता, शशक हो रखता शुभ्र शीश

ऊँच नीच का कुछ न बाध सबको समान देता सुधांशु
घटते घटते कटते कटते तन के लुट जाते अस्थि-मांस
होता जाता यह प्राण किन्तु आता कोई न कभी दुराव
जग-आह्लादित-कर्ता जीवन ही रस पाता अपना प्रभाव
कलुषित जीवन सा एक ह्रास
सन्ध्या-सरसिज के अन्तर् का सुनसान द्वार
घिर् दिगन्त के आकार पन्थ पर तिमिर-ज्वार
कृष्णारंग के काले सुर में जग निराधार
कुछ ही क्षण पूर्व दिनावसान, अब शान्त स्फार
जगमग जगमग चमका मीरों का निवास
मीरों के अन्तर् में द्विगुणित हर्षितोल्लास
चिन्तन के मञ्जुल भावों का शाश्वत विकास
गुन-गुना रहा था गायन मुख पर शान्ति-भास
मुझको पथ दीख रहा मेरा
जग का क्या है, जग तो यों ही पथ में बाधाएँ लायेगा
उत्थान में हानि देगा कुछ, पर पतन देख मुस्कायेगा
कंटक-तममय निर्जनपथ पर जग ने कब किस का साथ दिया?
तूफानों के ताण्डव में कब लोगों ने किसको हाथ दिया!
बढ़ने वाले, रहने वाले दोनों की ही विपरीत दिशा
जग आरामी है पर सम है बढ़ने को प्रात निशा
जिस पर न तिमिर कंटक कंकड़ बन विघ्न रहे वह पथ कैसा!
केवल डालों-शाखों पर ही जो चढ़ पाये, वह रथ कैसा!
चरणों के पाछे-पीछे ही क्या बढ़ना बढ़ने वालों का!
परवाह कराएगा आकर क्या बढ़ना बढ़ने वालों का!
पथ है यह ही, जिस पर विपदाओं का रहता प्रतिपल घेरा

चुप! चुप! रहने दो अब करो कल्पना माय!
सुमन भर अन्तर्-तम में कर दिये घाव
मर्यादानाशिनि अरे पतित कुल पथ मार!
निर्लज्जता में आ गई कहाँ से तू विकार!

सन्तोष तमा होगा जब तेरे हरूँ प्राण
गिरधर भी तेरा कर न सकेगा आज त्राण
मैं महाकाल जीवन करने वाला समाप्त
रे तू मैं मिलने वाले हैं तेरे मात्र व्याप्त
अधद का ज्यों आय देवर चुपचाप क्रुद्ध
मोरों वंस हो शान्त किन्तु निमय प्रबुद्ध
मोरों के ज्योतिमय ऊपर उठ गये नेत्र
वे क्रोध प्रमन्न थे, काँप रहे थे यथा वेत्र
ज्यों ही मोरों की दृष्टि पड़ी अभिराम शान्त
निश्छल निमल, निमय, दीपित, स्वर्गीय, कान्त
देवर हतप्रभ, श्रीहीन हुए, कर्तव्य भ्रान्त
हिल उठा डगमगा गया, हृदय का पुष्ट प्रान्त
कहते-कहते रुक गये, अचानक हुए मूक
चेतना गई कर्तव्य-मूढ़ ज्यों मूल-चूक
ज्योतिर्मय मुख-मंडल ने कम्पित किया ध्यान
सुन्दर थी स्वर-लहरी, सुन्दर था प्रगति-गान
गंभीर हो गई थी जागृत था स्वाभिमान
देवर ने बोला अनुचित यह आपण विधान
मैं समझ न पाया चाह रहे क्या मुझ्द आप ?
पहले कह बात फिर कर मकन में प्रताप
कुल-मर्यादा कर भंग बन रहा है अजान
अब सहा नहीं होगा मुझमें यह व्यर्थ ज्ञान
धर्मों-कर्मों के ऊपर पानी दिया फेर
क्या देख रहा है यों मुझको आँखें तरेर !
मेरे जीवन-आधार कृष्ण हैं एकमात्र
उसके ही मन चिन्तन, अभिलाषा और गात्र
मंदिरा के छोभी, आओ अपना करो काम !
रख दो भरने य माणिक मुक्ता धान्य, धाम !
जिस वैभव पर तुम मत्त बन हो, हो अधार
उसको ठुकराती हूँ मैं, मेरा दूर तार

नारी

मैं नारी हूँ स्वच्छन्द सर्वथा मुक्त पूत
कर सकते क्या तुम मांस-सुरा के अग्रदूत ?
नारी को तुम बन्दिनी बनाना रहे चाह
है धर्म तुम्हारा उसकी पीड़ा, करुण दाह
ऐसे धर्मों कर्मों का होगा शीघ्र नाश
देखो, सोचो अब चेतो रे वासना दास !
मिथ्या है कुल मर्यादा का दर्पाभिमान
ऊँचा, नीचा चिन्तन प्राणी का व्यर्थ ज्ञान
स्वार्थों का ही जंजाल बन रहा है समाज
कुटिलों विश्वास घातियों का हो रहा राज
कैसा समाज यह जिसमें होते भ्रूण पात ?
नन्हें शिशुओं के शोणित में भू रक्त स्नात
दुर्गन्धित सर है, घूम रहे स्वच्छन्द दल
कैसा समाज, कैसी मर्यादा, कहाँ धर्म ?
ऐसे समाज, कुल पर करती मैं पदाघात
कुल-मर्यादा, मूढ़ों के मन का क्षुद्र बात
प्रभु का कण-कण जग के जन-जन मेरा समाज
मैं नहीं कूप-मण्डूक न मठ धामें, स्थान

मैं गिरधर के रंग राचूँगी
अभिशाप शाप जप नाप ताप
मैं घुल रही हूँ पुण्य-पाप
छोटे लोगों की क्षुद्र माप
रोकेगा मुझको क्या विलाप ?
रे, इन आवरणों के भीतर
अन्याय असत्य छिपा जर्जर
पक्षी का नैसर्गिक अम्बर
जीवन का सत्य महा पिंजर
नूतन सजीवता का संबल
प्राचीरों में गति ज्ञान विकल
भावाकुल हैं पग तक चंचल
गतिशील रथों पर मन निश्चल

आशा-इंगित सा विशेषण
महला दूना जग-तल के क्षण
हैं मूल्यवान् जीवन के क्षण
धरती जैसा है मेरा प्रण

कहते हो तुम मत नाचो पर
मैं नाचूँगा मैं नाचूँगा
मैं गिरधर के रँग नाचूँगा
मैं आग लगाने आया हूँ
मैं आग लगा कर जाऊँगी
पलकें सपनों में डूब रहीं
मधु माना विहँस रहा झुलना
आलोक-विभा के अधरों पर
सुन्दर सा लगता है चलना
रे जाग जगाने आयी हूँ
जग जाग! जगाकर जाऊँगा
मैं आग लगाने आई हूँ
मैं आग लगा कर जाऊँगा
मादकता के अंतस्तल में
ऊसर-मेड़ों का अट्टहास
सारस गतभा पंखुड़ियों सुन
आतप-आगम, हरन हवाएँ
मैं आग लगाने आया हूँ
मैं आग लगा कर जाऊँगा
मैं आग लगाने आया हूँ
मैं आग लगा कर जाऊँगा
अरुणिमा-तरुणिमा अलसायन
जलधर घिर घिर विस्तृत तिर-तिर
उपानिर्मित्य मम का हविष्य
गान-गान चिरंतन अचिर अजिर

तम मार भगाने आयी हूँ
रे भाग भगा कर जाऊँगी
मैं आग लगाने आयी हूँ
मैं आग लगा कर जाऊँगी
कोई न रोकने वाला मीराँ चली मग्न
अभिराम, अलौकिक पावन आभा में निमग्न
हत प्रभ निर्वाक् विमूढ़, काष्ठ सा स्थाणु, म्लान
रह गया दूरता हा द्वार अनुभव नवीन
पिंजड़े का सीमा-कारा से सिंहनी मुक्त
उसकी दहाड़ में हुआ अधिप सभीति-युक्त

बहनेवाली धारा को कोई सका रोक!
हत्यारा था चुप गरज रहा जो ताल ठोंक
ऊँचे ऊँचे गिरि-शृंग झाँकते रहे श्याम
आश्चर्य चकित, विह्वल गद् गद् थे रोम राम
दिग्मंडल भू, आकाश, आप ज्यों गये काँप
प्रासाद, महल कुंठित वैभव, ज्यों डस साँप
पी गई नगरकल्याण हेतु वह कालकूट
टिक सका सत्य के आगे किंचित् भी न कूट
दुर्दान्त काल-सर्पों के रौरव कुटिल दंश
ज्योतिर्जीवन का दूर न पाये डग शेष
चरणामृत सम ले लिया धरा का पाप-ताप
मारुत् लहरों में फैल गया पावन प्रताप
नतमस्तक श्रद्धा-नत में हुआ जन-समूह
मीराँ की जय मीराँ की जय मय चक्र व्यूह
पग घुँघरू बाँध मीराँ नाची रे!
मैं तो अपणे नारायण री, आपइ होगी दासी रे!
लोग कहै मीराँ हुई बावरी सास कहै कुलनासी रे!
विष रो प्यालो राणाजी भेज्या पीवत मीराँ हाँसी रे!
'मीराँ रा प्रभु गिरधर नागर सहज मिल्या अविनासी रे!

